श्री रत्नत्रय मण्डल विधान

रचयिता
कविवर पण्डित राजमल पवैया, भोपाल

प्रकाशक
अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

प्रथम तीन संस्करण : ६ हजार
(१७ अप्रैल १९९९ से अद्यतन)
चतुर्थ संस्करण : १ हजार
(१२ जून, श्रुतपंचमी २००५)
योग : ७ हजार

मूल्य : **सोलह रुपये**

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

विषय-सूची

मंगलाचरण, पीठिका	१
समुच्चय पूजन	४
श्री सम्यग्दर्शन पूजन	९
श्री अष्टांग समुच्चय पूजन	२२
श्री निःशंकित अंग पूजन	२६
श्री निःकांक्षित अंग पूजन	३१
श्री निर्विचिकित्सा अंग पूजन	३५
श्री अमूढ़ दृष्टि अंग पूजन	३८
श्री उपगूहन अंग पूजन	४२
श्री स्थितिकरण अंग पूजन	४६
श्री वात्सल्य अंग पूजन	५०
श्री प्रभावना अंग पूजन	५४
श्री सम्यग्ज्ञान पूजन	५८
श्री सम्यक्चारित्र पूजन	६६
श्री पंचमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	७३
श्री अहिंसाव्रतधारक पूजन	७७
श्री सत्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	८२
श्री अचौर्यमहाव्रतधारक मुनिराजपूजन	८६
श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	८९
श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन	९४
श्री पंचसमितिधारक मुनिराज पूजन	९९
श्री ईर्यासमितिधारक मुनिराज पूजन	१०२
श्री भाषासमितिधारक मुनिराज पूजन	१०६
श्री एषणासमितिधारक मुनिराज पूजन	११०
श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारक मुनिराज पूजन	११४
श्री प्रतिष्ठापनसमितिधारक मुनिराज पूजन	११८
श्री तीनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१२२
श्री मनोगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१२७
श्री वचनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१३०
श्री कायगुप्तिधारक मुनिराज पूजन	१३४
अंतिम महार्घ्य	१३८
महाजयमाला	१४०
शान्तिपाठ एवं क्षमापना	१४१

ॐ

श्री रत्नत्रय मंडल विधान

मंगलाचरण

(अनुष्टुप्)

मंगलं सिद्धपरमेष्ठी, मंगलं तीर्थंकरम्।
मंगलं शुद्धचैतन्यं, आत्मधर्मोऽस्तु मंगलम् ।।१।।
मंगलं दर्शनं ज्ञानं, चारित्रं रत्नत्रयम्।
मंगलं कल्याणमस्तु, जिनविधान सुमंगलम् ।।२।।

(चामर)

वीतराग श्री जिनेन्द्र ज्ञानरूप मंगलम्।
गणधरादि सर्वसाधु ध्यानरूप मंगलम् ।।३।।
आत्मधर्म विश्वधर्म सार्वधर्म मंगलम्।
वस्तु का स्वभाव ही अनाद्यनंत मंगलम् ।।४।।
शुद्ध रत्नत्रयी स्वभाव ही सुमंगलम्।
पूर्ण दर्शन ज्ञान चारित्र मंगलम् ।।५।।

(दोहा)

जयति पंचपरमेष्ठी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
जय जगदम्बे दिव्यध्वनि, श्री जिनधर्म प्रणाम ।।६।।

पीठिका

(रोला)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रमयी रत्नत्रय।
यही मुक्ति सोपान तीन है पवित्र शिवमय ।।१।।
यही मुक्ति का मार्ग एक है भवदुःखहारी।
यही भव्य जीवों को है उत्तम सुखकारी ।।२।।

है पच्चीस दोष से विरहित सम्यग्दर्शन।
आठ अंगयुत सम्यग्ज्ञान श्रेष्ठ ज्ञानधन।।३।।
तेरहविध चारित्र शुद्ध शिवसुख का साधन।
दर्शन ज्ञान चरित्र दिव्य त्रिभुवन में धन-धन।।४।।
तीर्थंकर भी इसको धारण कर हर्षाते।
इसके द्वारा भवसागर तर शिवसुख पाते।।५।।
निश्चय निर्विकल्प रत्नत्रय शिवसुखदायी।
रत्नत्रय व्यवहार मात्र है सुर सुखदायी।।६।।
अब तक जो भी सिद्ध हुए उनको है वन्दन।
वर्तमान में जो हो रहे उन्हें अभिनन्दन।।७।।
आगे भी जो होंगे सिद्ध उन्हें अभिनन्दूँ।
भूत भविष्यत् वर्तमान सिद्धों को वन्दूँ।।८।।

(मानव)

मुनि पंचमहाव्रत धारी रत्नत्रय से हो भूषित।
रत्नत्रयनिधि को पाकर होते न कभी फिर दूषित।।९।।
रत्नत्रय भवदु:खघाता रत्नत्रय शिवसुखदाता।
रत्नत्रय की महिमा से ध्रुव सिद्ध स्वपद मिल जाता।।१०।।
प्रभु महावीर की वाणी रत्नत्रय निधि दर्शाती।
जो भी भव्यात्मा होते उनको ही सतत सुहाती।।११।।
मुनिराजों के अंतर में निज अनुभव रस बरसाती।
फिर मुक्तिवधू भी इसको ही सादर शीष झुकाती।।१२।।

(दोहा)

दर्शन ज्ञान चरित्रमय, यह रत्नत्रययान।
ले जाता है सिद्धपुर, देता पद निर्वाण।।१३।।
रत्नत्रय की बाँसुरी, गाती मंगलगान।
रत्नत्रय की बीन सुन, करूँ आत्मकल्याण।।१४।।

(सोरठा)

रत्नत्रय की भक्ति, सब जीवों को प्राप्त हो।
दर्शन ज्ञान चरित्र, सबके उर में व्याप्त हो।।१५।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

रत्नत्रय महिमा

(ताटंक)

निज चैतन्य स्वरूप आत्मा में श्रद्धा सम्यग्दर्शन।
जिसके बल से अल्प तपस्या भी हरती भवदु:खक्रन्दन।।१।।
निज चैतन्य स्वरूप आत्मा का ही ज्ञान सुसम्यग्ज्ञान।
निज चैतन्य स्वरूप में चर्या चारित्र महान।।२।।
ये रत्नत्रय कहलाता है इक निश्चय इक है व्यवहार।
केवल निश्चय रत्नत्रय ही ले जाता भवसागर पार।।३।।
जो संसार मुक्त होना चाहें वे धारें रत्नत्रय।
मोक्षमार्ग की प्राप्ति करें वे ध्याएँ निश्चय आत्मनिलय।।४।।
रत्नत्रय बिन पुद्गल जड़ तनप्रेमी तो हैं बहिरात्मा।
समकित लेकर अन्तरात्मा हो बन जाते परमात्मा।।५।।
वचन-अगोचर अनुभवगोचर ध्रुव चिद्रूप सदैव नमन।
एक बार के नमस्कार से हो जाता मिथ्यात्व वमन।।६।।
समीचीन विद्या स्वभाव की मुक्ति सखी है वन्दन योग्य।
शेष अविद्या लौकिक सारी मुक्तिप्राप्ति के सदा अयोग्य।।७।।
निज अखण्ड रत्नत्रय से मिलता भव्यों को मोक्ष महान।
रत्नत्रयधारी मुनिवर ही अष्टकर्म करते अवसान।।८।।
शुद्ध ज्ञानगंगा धारा रत्नत्रय तरु करती सिंचन।
महामोक्षफल का दाता है हरता सर्व कर्मबंधन।।९।।
दुष्ट कर्मरूपी वन को यह रत्नत्रय है अग्निसमान।
राग स्वरूप सर्प दर्प को भस्म हेतु है मंत्रसमान।।१०।।
चिन्तामणि सम चिन्तित फलदाता दुर्गति करता जारण।
पापहरण है सुगतिप्रदाता रत्नत्रय ही सुखकारण।।११।।
यह अतिशय विवेक का दाता नहीं किसी से डरता है।
केवलज्ञानप्रकाश दान कर अंधकार सब हरता है।।१२।।
पापरूप तरु को कुठारसम पुण्यतीर्थ में श्रेष्ठ प्रधान।
इसके आलंबन से मिलता परम श्रेष्ठ पावन निर्वाण।।१३।।
मन वच तन त्रययोग पूर्वक बोलो रत्नत्रय की जय।
जो रत्नत्रय के धारी हैं उनकी बोलो जय जय जय।।१४।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

२. समुच्चय पूजन

(कुण्डलिया)

रत्नत्रय निज धर्म है, महामोक्ष दातार।
जो भी इसको धारते, हो जाते भवपार।।१।।
हो जाते भव पार मुक्ति के पथ पर आकर।
यथाख्यात चारित्र प्राप्ति हित निज को ध्याकर।।२।।
धर्मध्यान फिर शुक्लध्यान का लेकर आश्रय।
पूर्ण सफलता पा लेते पाकर रत्नत्रय।।३।।

(दोहा)

भाव सहित पूजन करूँ, रत्नत्रय की आज।
रत्नत्रय की कृपा से, पाऊँ निज पद राज।।४।।
रत्नत्रय की नाव ही, करती भव से पार।
रत्नत्रय की भक्ति ही, देती सौख्य अपार।।५।।

(ताटंक)

प्रभु रत्नत्रय को आह्वानन कर अंतर में पधराऊँ।
रत्नत्रय सन्निकट होऊँ मैं पूजन कर ध्रुव सुख पाऊँ।।६।।
निरतिचार रत्नत्रय पालूँ निज स्वरूप को ही ध्याऊँ।
रत्नत्रय की निधि पाकर प्रभु आत्मशांति उर में लाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपरत्नत्रयधर्म अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपरत्नत्रयधर्म अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपरत्नत्रयधर्म अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी सम्यक् जल का जो करते पान।
जन्म-जरादिक नाश रोग त्रय हो जाते हैं वे भगवान।।

अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।१।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शनज्ञान चरित्रमयी रत्नत्रय जो उर में धरते।
भवातापज्वर क्षय कर देते भव-भव की पीड़ा हरते।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।२।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी अक्षत अनंत गुण के दाता।
उत्तम पद की प्राप्ति कराते जो हैं त्रिभुवन विख्याता।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरह विध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।३।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी पुष्पों की मृदुल सुरभि अविकार।
कामबाण पीड़ा विध्वंसक महाशील गुण की भंडार।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरह विध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।४।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी अनुभव रसमय चरु सुखदायी।
क्षुधारोगज्वाला के नाशक शाश्वत सुख आनन्ददायी।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरह विध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।५।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी दीपक की ज्योति प्रकाशमयी।
मिथ्यातम क्षय करती है यह देती ज्ञान विकासमयी।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरह विध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।६।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी निज ध्यानधूप भवदुःखहर्त्ता।
अष्टकर्म विध्वंसक है यह परम ध्रौव्य शिवसुखकर्त्ता।।

अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।७।।
ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी तरुवर के फल शिवसुखदाता।
महामोक्षफल प्रदान करते भवसमुद्र दुःख के घाता।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।८।।
ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दर्शन ज्ञान चरित्रमयी अर्घ्यों के पुञ्ज बनाऊँगा।
पद अनर्घ्य अविनश्वर पाकर सर्वोत्तम सुख पाऊँगा।।
अष्ट अंगयुत सम्यग्दर्शन अष्ट भेदयुत सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र युक्त ही रत्नत्रय है धर्म महान।।९।।
ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय अर्घ्यावलि

(दोहा)

सम्यग्दर्शन बिन नहीं, स्वपर भेद-विज्ञान।
रत्नत्रय का मूल यह, महिमामयी महान।।१।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान बिना नहीं, होता निज पर बोध।
केवलज्ञान महान को, लेता है यह गोद।।२।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बिन सम्यक् चारित्र के, मुक्ति असंभव मान।
तेरहविध चारित्र ही, मंगलमय शिवयान।।३।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रत्नत्रयधर्म ही, परम सौख्यदातार।
मंगलमय विज्ञान यह, कर देता भवपार।।४।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपद-प्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(चौपई)

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान। दृढ़ सम्यक्चारित्र महान।।
ये ही है रत्नत्रययान। दाता परम सौख्य निर्वाण।।१।।
अष्ट अंगयुत समकित शुद्ध। अष्ट भेदयुत ज्ञान विशुद्ध।।
तेरहविध चारित्र प्रधान। शुद्धभावना हो भगवान।।२।।
धर्मध्यान निज के अनुकूल। शुक्लध्यान का है यह मूल।।
ये ही है संयम का स्रोत। शुद्धभाव से ओतप्रोत।।३।।
यही स्वरूपाचरण पवित्र। ये ही यथाख्यात चारित्र।।
जो भी लेते इसको धार। वे जाते हैं भव के पार।।४।।
हम भी धारण करें महान। निज कल्याण करें भगवान।।
निश्चय पंचमहाव्रत धार। पंचसमिति पालें अविकार।।५।।
मन वच तन त्रयगुप्ति सँवार। ये तेरहविध चारित्र सार।।
मुनि बनकर पालें निर्दोष। निज स्वभाव में हो संतोष।।६।।
यह रत्नत्रय श्रेष्ठविधान। दाता उत्तम सौख्य महान।।
परम श्रेष्ठ मंगलमय भव्य। इसे न पाते कभी अभव्य।।७।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, रत्नत्रय को आज।
रत्नत्रय की भक्तिकर, पाऊँ निजपदराज।।
ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सवैया)

पर परिणति से तो पीछा छुड़ाने के लिए,
निज परिणति को पास में बुला लिया।
पहले मिथ्यात्व मोह नष्ट किया मैंने प्रभु,
जितना था राग-द्वेष सबको गला दिया।।१।।

अब प्रभु द्वंद्व-फंद रहा नहीं कुछ शेष,
शुद्ध सम्यक्त्व लेके अपना भला किया।
जो भी संसार भाव था अनादिकाल से ही,
उसको भी ध्यानशक्ति से मैंने जला दिया।।२।।

(वीर)

पंचमहाव्रत, पंचसमिति, त्रयगुप्ति, त्रयोदशविध चारित्र।
सम्यग्दर्शन पूर्वक ही ये होते हैं परमार्थ पवित्र।।१।।
तीन चौकड़ी युत कषाय का जब अभाव हो जाता है।
तब ही मुनि निर्ग्रंथ स्वरूपी महाव्रती हो जाता है।।२।।
शेष संज्वलन ही रहती है सूक्ष्म लोभ दसवें तक ही।
इसका भी अभाव हो जाता क्षीणमोह थल पाते ही।।३।।
निश्चय रत्नत्रय बिन होता कभी नहीं सच्चा व्यवहार।
इसके बिन व्यवहाराभास कहाता है सारा व्यवहार।।४।।
जिसने रत्नत्रय को धारा उसने ही पाया शिवपंथ।
दर्शन ज्ञान चारित्र धारकर हो जाता है मुनि निर्ग्रंथ।।५।।
वही मोक्षमार्गी बन करके करता कर्मों का अवसान।
सर्व कर्म से रहित दशा पा होता परम सिद्ध भगवान।।६।।
भेद नहीं ज्ञायक में होता मात्र भेद कथनी उपचार।
ज्ञायक तो केवल ज्ञायक है ज्ञायक ही जाता भवपार।।७।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय की पूजन करके हो जाऊँ स्वामी अविकार।
निश्चय रत्नत्रय धारूँ मैं पालूँ रत्नत्रय व्यवहार।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

卐

ॐ

३. श्री सम्यग्दर्शन पूजन

(ताटंक)

भेदज्ञान पूर्वक जब सम्यग्दर्शन उर में आता है।
भव-भव के पातक क्षय होते मिथ्याभ्रम नश जाता है।।
क्रूर मोह मिथ्यात्व नाश हित सम्यग्दर्शन पाऊँगा।
सम्यग्दर्शन की पूजन कर निजस्वभाव में आऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री धर्ममूल-अष्टांगसम्यग्दर्शन अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री धर्ममूल-अष्टांगसम्यग्दर्शन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री धर्ममूल-अष्टांगसम्यग्दर्शन अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(राधिका)

निश्चय जल का ही प्रतिपल पान करूँ प्रभु।
मिथ्यात्व मोह की छाया नाश करूँ विभु।।
जन्मादि रोग त्रय नाश करूँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय अक्षत गुण अंतरंग में लाऊँ।
कर प्राप्त स्वरूपाचरण स्वयं को ध्याऊँ।।
संसारतापज्वर नाश करूँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय अक्षत गुण अंतरंग में लाऊँ।
आनन्द अतीन्द्रिय की तरंग प्रभु पाऊँ।।
निज अखंड अक्षयपद पाऊँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय स्वपुष्प निज सुरभिमयी मैं लाऊँ।
गुणशील लाख चौरासी हे प्रभु पाऊँ।।
चिर कामबाण विध्वंस करूँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय नैवेद्य स्वरस निर्मित प्रभु लाऊँ।
परिपूर्ण निराहारी पद हे प्रभु पाऊँ।।
चिर क्षुधाव्याधि का नाश करूँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय स्वज्ञान की जगमग ज्योति जगाऊँ।
कैवल्यज्ञान की गरिमा मैं भी पाऊँ।।
मिथ्यात्व मोह अज्ञान मिटाऊँ स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय स्वधर्म की धूप ध्यानमय लाऊँ।
पा धर्मध्यान फिर शुक्लध्यान ही ध्याऊँ।।
वसु मूलप्रकृति कर्मों की नाशूँ स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय स्वभाव तरु के पवित्र फल लाऊँ।
ध्या अंतिम शुक्लध्यान मैं शिवपुर जाऊँ।।
फल पूर्ण मोक्ष सर्वोत्तम पाऊँ स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निश्चय स्वरूप का अर्घ्य गुणमयी लाऊँ।
पाऊँ अनंत गुण परमामृत रस पाऊँ।।
परमोत्तम पद अनर्घ्य पाऊँ हे स्वामी।
सम्यग्दर्शन पाऊँ हे अन्तर्यामी।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

卐 श्रीसम्यग्दर्शन अर्घ्यावलि 卐

१. दशभेद सहित सम्यग्दर्शन

(वीर)

निमित्तादि की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन के दस भेद।
नहीं किसी की अपेक्षा है निश्चय से है सदा अभेद।।१।।
आर्ष, मार्ग, बीज, उपदेश, सूत्र, संक्षेप, अर्थ, विस्तार।
समकित है अवगाढ़ और परमावगाढ़ दस भेद विचार।।२।।
जैसे भी हो जिसप्रकार हो सम्यग्दर्शन लूँ उर धार।
यदि मरना भी पड़े मुझे तो मरकर भी पाऊँ अविकार।।३।।

ॐ ह्रीं श्री दशभेदसहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. अन्यायत्याग भूषित सम्यग्दर्शन

(रोला)

सम्यग्दृष्टि जीव सदाचारी होते हैं।
पर जीवों की पीड़ा हर प्रमुदित होते हैं।।
कभी नहीं अन्याय भाव आता है उर में।
शुद्धभावना भाते रहते अभ्यंतर में।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अन्यायत्यागगुणभूषितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. अनीतित्याग भूषित सम्यग्दर्शन

वे अनीति से दूर सतत रहते निजपुर में।
नीति पूर्वक रहते हैं वे ग्राम नगर में।।
सदा जागृत शुद्धभावना भाते रहते।
न्याय नीति से वे लौकिकसुख पाते रहते।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अनीतित्यागगुणभूषितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. अभक्ष्ययाग भूषित सम्यग्दर्शन

वे अभक्ष्य का भक्षण कभी नहीं करते हैं।
भक्ष्यपदार्थों में भी वे विवेक रखते हैं।।
जागरूक हो आत्मभावना भाते रहते।
सपने में भी अभक्ष्यभक्षण नहीं वे करते।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अभक्ष्यत्यागगुणभूषितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. निन्द्यव्यापारत्याग भूषित सम्यग्दर्शन

कभी निन्द्यव्यापार भूलकर भी ना करते।
निन्द्यकार्य करने से वे सदैव ही डरते।।
आठों याम शुद्धभावना भाते रहते।
अवसर मिलते ही स्वरूप में सुस्थिर रहते।।४।।

ॐ ह्रीं श्री निन्द्यव्यापारत्यागगुणभूषितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. अष्टगुण भूषित सम्यग्दर्शन

अनुकम्पा, आस्तिक्य, भक्ति उपशम, गुण उर में।
अपनी निन्दा, गर्हा, अरु निर्वेग हृदय में।।
आत्मधर्म अनुराग, हृदय में पूरा-पूरा।
वे वसुगुण धारणकर करते भवदुःख चूरा।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टगुणभूषितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. पाँच प्रकार मिथ्यात्व रहित सम्यग्दर्शन

प्रभु एकान्त विनय संशय विपरीत विनाशूँ।
क्षय अज्ञानभाव करके सम्यक्त्व प्रकाशूँ।।
सम्यग्दर्शन का बल ले शिवपथ पर आऊँ।
फिर अवगाढ़ तथा परमावगाढ़ भी पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री पंचप्रकारमिथ्यात्वरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो घर में श्रावक न बना, वह वन में जा मुनि क्या होगा।
मुनि हो जाता होगा तो फिर नरकों का बंध करता होगा।।१।।

पहले तू सच्चा श्रावक बन घर में रह अणुव्रत पालन कर।
फिर क्षुल्लक ऐलक बनकर के अभ्यास पूर्ण करना होगा।।२।।

परिपक्व पात्रता आ जाये तब पंचमहाव्रत धारण कर।
फिर वन में जाकर ध्यान लगा सच्चा मुनिपद तब ही होगा।।३।।

पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शन

(दोहा)

सम्यग्दर्शन प्राप्ति हित, त्याग सर्व ही दोष।
इससे ही तुम तृप्त हो, पाओगे संतोष।।

卐 अष्टदोष रहित सम्यग्दर्शन 卐

१. शंकादोष रहित सम्यग्दर्शन

(जोगीरासा)

शंकादोष विहीन बनूँ मैं निर्मल समकित धारूँ।
तत्त्वाभ्यास करूँ नित स्वामी आत्मस्वरूप विचारूँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री शंकादोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. कांक्षादोष रहित सम्यग्दर्शन

कांक्षादोष तजूँ हे स्वामी निर्मलता उर धर लूँ।
भवसुख की इच्छाएँ सारी हे प्रभु मैं सब हर लूँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री कांक्षादोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. विचिकित्सादोष रहित सम्यग्दर्शन

विचिकित्सा का दोष त्याग दूँ समकित हृदय सजाऊँ।
ऋषि मुनियों की वैय्यावृत्ति में अपना ध्यान लगाऊँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री विचिकित्सादोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. अनुपगूहनदोष रहित सम्यग्दर्शन

अनुपगूहनदोष त्यागकर गुण सबके प्रगटाऊँ।
ऋषि मुनि श्रावक सबके दोषों को न कभी प्रगटाऊँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अनुपगूहनदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. मूढ़दृष्टिदोष रहित सम्यग्दर्शन

मूढ़दृष्टियुत दोष विनाशूँ सकल मूढ़ता नाशूँ।
निज शुद्धात्मतत्त्व की महिमा पाऊँ ज्ञान प्रकाशूँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री मूढ़दृष्टिदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. अस्थितिकरणदोष रहित सम्यग्दर्शन

जिनपथ से जो डिगते हों मैं उनको सुथिर बनाऊँ।
धर्मीजन की सेवा करके अपना धर्म निभाऊँ।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री अस्थितिकरणदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. अवात्सल्यदोष रहित सम्यग्दर्शन

साधर्मी वात्सल्य न भूलूँ प्रीति करूँ मैं मन से।
मुनि अरु श्रावक संघ की सेवा करूँ मैं तन–धन–मन से।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री अवात्सल्यदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८. अप्रभावनादोष रहित सम्यग्दर्शन

श्री जिनधर्म प्रभाव करूँ मैं शुद्ध आचरण द्वारा।
जिनश्रुत ज्ञानदान आदि से दूर करूँ अँधियारा।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री अप्रभावनादोषदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टदोष सम्यग्दर्शन के घोर भयंकर दुःखमय।
एक दोष भी हो तो फिर सम्यक्त्व न होता निश्चय।।
अष्टदोष से विरहित होकर सम्यग्दर्शन पाऊँ।
सम्यक् श्रद्धापूर्वक स्वामी सर्वदोष विनशाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टमद रहित सम्यग्दर्शन

१. ज्ञानमदरहित सम्यग्दर्शन

(ताटंक)

जिसे ज्ञानमद होता उसको सम्यग्ज्ञान नहीं होता।
सम्यग्दर्शन का घातक बन पापबीज ही वह बोता।।
सम्यग्दर्शन पाना है तो करो ज्ञानमद चकनाचूर।
सम्यक् श्रद्धा उर प्रगटेगी फिर होगा समकित भरपूर।।१।।

ॐ ह्रीं श्री ज्ञानमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. पूजामदरहित सम्यग्दर्शन

पूजामद से जो दूषित वे मात्र प्रतिष्ठा के भूखे।
सम्यग्दर्शन घात कर रहे निजस्वरूप के प्रति रूखे।।
सम्यग्दर्शन पाना है तो पूजामद कर दो चकचूर।
दृढ़ श्रद्धा निजअंतर होगी समकित होगा उर भरपूर।।२।।

ॐ ह्रीं श्री पूजामदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. कुलमदरहित सम्यग्दर्शन

जो कुलमद में अंध हो रहे नहीं जानते कुल के भेद।
कोटि–कोटि कुल नीच–ऊँच में रहकर पाया भवदुःख खेद।।
सम्यक् श्रद्धा पाना है तो कुलमद त्यागो भली प्रकार।
दृढ़ श्रद्धान हृदय में धारो तो हो जाओगे भवपार।।३।।

ॐ ह्रीं श्री कुलमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. जातिमदरहित सम्यग्दर्शन

जो हैं मूढ़ जातिमद में वे करते हैं अनगिनती पाप।
सिद्ध जाति के चिदानंद निज का न कभी कर पाते जाप।।
निश्चय निजश्रद्धा पाने को करो जातिमद का अवसान।
दृढ़ श्रद्धान हृदय में होगा पाओगे निजसौख्य महान।।४।।

ॐ ह्रीं श्री जातिमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. बलमदरहित सम्यग्दर्शन

बलमद में जो भी मूर्छित हैं अन्तरंग बल क्या जानें ।
सम्यग्दर्शन का घातक बलमद है कैसे पहिचानें ।।
निश्चय श्रद्धा पाना है तो बलमद कर दो चकनाचूर ।
दृढ़ श्रद्धान हृदय में होगा पाओगे निजसुख भरपूर ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री बलमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

६. ऋद्धिमदरहित सम्यग्दर्शन

जो जन ऋद्धि प्राप्त कर लेते वे न कभी मद करते हैं ।
जो करते मद ऋद्धि प्राप्ति का वे भवदुःख घट भरते हैं।।
निश्चय श्रद्धा पाना है तो रहो ऋद्धिमद से बहु दूर ।
दृढ़ श्रद्धान निजअंतर होगा सम्यक्सुख होगा भरपूर ।।६।।
ॐ ह्रीं श्री ऋद्धिमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

७. तपमदरहित सम्यग्दर्शन

तपमद के अभिमानी बनने वाले भवदुःख पाते हैं ।
तपफल मोक्षसौख्य तज करके सदा अधोगति जाते हैं ।।
निश्चय श्रद्धा पाना है तो तपमद का कर दो अवसान ।
दृढ़ श्रद्धान सुसम्यक् होगा पाओगे निजपद निर्वाण ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री तपमदविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

८. रूपमदरहित सम्यग्दर्शन

कामदेव सम अगर रूप है तो भी मान न कर चेतन ।
अगर रूपमद उर में होगा तो फिर होगा पूर्ण पतन ।।
निश्चय श्रद्धा पाना है तो करो रूपमद पूर्ण विनाश ।
दृढ़ श्रद्धा अन्तर में धारो पाओ सम्यग्ज्ञान प्रकाश ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री रूपमदविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

आठों मद का नाश कर, करो स्वयं का ध्यान ।
सम्यग्दर्शन शुद्ध पा, करो आत्मकल्याण ।।
पूर्ण अर्घ्य अर्पण करूँ, करूँ अष्टमद नाश ।
सम्यग्दर्शन प्रकट कर, पाऊँ आत्मप्रकाश ।।
ॐ ह्रीं श्री अष्टमदरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

षट् अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

१. कुदेव-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

(ताटंक)

सर्व कुदेवों से बचकर प्रभु सच्चे देव सदा ध्याऊँ ।
वीतराग-सर्वज्ञ-हितंकर श्री अरहंत शरण पाऊँ ।।
महादोष सम्यग्दर्शन का है अनायतन दुःखदायी ।
सदा सुदेव चरण ही पूजूँ जो हैं शाश्वत सुखदायी ।।१।।
ॐ ह्रीं श्री कुदेवअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

२. कुगुरु-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

सतत् कुगुरुओं की सेवा कर मैंने प्रभु भवदुःख पाया ।
नहीं सुगुरुओं के चरणों में जाकर तत्त्वज्ञान भाया ।।
महादोष सम्यग्दर्शन का है अनायतन दुःखदायी ।
सच्चे वीतराग गुरु की ही सेवा उत्तम सुखदायी ।।२।।
ॐ ह्रीं श्री कुगुरुअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

३. कुधर्म-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

जो कुधर्म का सेवन करते वे ही पाते कष्ट अपार ।
वीतराग जिनधर्म छोड़कर करते नित खोटा व्यवहार ।।
महादोष सम्यग्दर्शन का भव अनंत हों दुःखदायी ।
सम्यग्धर्म हृदय में धारण करना ही बहु सुखदायी ।।३।।
ॐ ह्रीं श्री कुधर्माअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

४. कुदेव-उपासक-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

जो कुदेव के सदा उपासक और प्रशंसक होते हैं ।
वे ही भवदुःख वृक्षबीज अपने अंतर में बोते हैं ।।
महादोष सम्यग्दर्शन का है भवसागर दुःखदायी ।
जो सुदेव के सतत उपासक पाते निजपद सुखदायी ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री कुदेवउपासकअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

५. कुगुरु-उपासक-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

कुगुरु उपासक तथा प्रशंसक नरकों में ही जाते हैं ।
हो मिथ्यात्व मोह से दूषित दुर्गति के दिन पाते हैं ।।

महादोष सम्यग्दर्शन का है भवसागर दुःखदायी।
सुगुरु उपासक सच्चे श्रावक पाते निजपद सुखदायी।।५।।
ॐ ह्रीं श्री कुगुरुपासकअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. कुधर्म-उपासक-अनायतन रहित सम्यग्दर्शन

जो कुधर्म के सतत प्रशंसक तथा उपासक प्राणी हैं।
सच्चे आत्मधर्म को भूले महामूढ़ अज्ञानी हैं।।
महादोष सम्यग्दर्शन का भवसमुद्रवर्धक दुःखमय।
जो सुधर्म का सेवन करते पाते शाश्वतपद सुखमय।।६।।
ॐ ह्रीं श्री कुधर्मउपासकअनायतनविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(कुण्डलिया)

षट् अनायतन दोष तज, पाऊँ समकित पूर्ण।
जिन-आगम की छाँव में, श्रद्धा हो आपूर्ण।।
श्रद्धा हो आपूर्ण अर्घ्य अर्पित करता हूँ।
अब प्रभु ऐसे दोष न हों निश्चय करता हूँ।।
सम्यग्दर्शन शुद्ध प्राप्ति का करूँ मैं यतन।
निज आयतन पाकर तज दूँ मैं षट् अनायतन।।
ॐ ह्रीं श्री षड्अनायतनदोषविहीनसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन मूढ़ता रहित सम्यग्दर्शन

(ताटंक)

देवमूढ़ता गुरुमूढ़ता लोकमूढ़ता सब त्यागूँ।
ये तीनों मूढ़ता समझकर इनसे सदा दूर भागूँ।।
वीतरागता के स्वरूप को जानूँ दूर करूँ अज्ञान।
रहूँ अमूढ़दृष्टि हे स्वामी सुदृढ़ करूँ निज का श्रद्धान।।

१. देवमूढ़ता रहित सम्यग्दर्शन

(वीर छंद)

रागी-द्वेषी देवों की पूजन यह देवमूढ़ता जान।
रोगमुक्ति या पुत्रप्राप्ति या धनवांछा हित का अज्ञान।।
अष्टादश दोषों से विरहित ही होते हैं सच्चे देव।
वीतराग देवों की पूजन सच्चा सुख देती स्वयमेव।।१।।
ॐ ह्रीं श्री देवमूढ़तारहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. गुरूमूढ़ता रहित सम्यग्दर्शन

(ताटंक)

जो सग्रन्थ आरम्भ परिग्रह युत हैं पाखंडी हिंसक।
इनकी सेवा विनय वन्दना गुरूमूढ़ता भववर्धक।।
सुगुरु स्वरूप समझकर उनको ही मैं करूँ सदैव नमन।
क्रोधी मानी यशलोभी गुरूओं से सदा बचूँ भगवन।।२।।
ॐ ह्रीं श्री गुरुमूढ़तारहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. लोकमूढ़ता रहित सम्यग्दर्शन

(वीरछंद)

लोकमूढ़ता देखादेखी चलूँ न मूढ़ों के अनुसार।
भलीभाँति से करूँ परीक्षा लोकमूढ़ता कर परिहार।।१।।
चाहे जैसी तनमुद्रा हो उसके आगे झुकूँ नहीं।
वीतरागमुद्रा ही पूजूँ लोकमूढ़ मैं बनूँ नहीं।।२।।
अबतक बाँट तराजू पूजे पूजी मैंने कलम-दवात।
खाते बही तिजोरी पूजी लक्ष्मी पूजी सारी रात।।३।।
नदीनह्वन में धर्म मानकर सागर भी पूजे बहुबार।
व्यंतर पूजे नवग्रह पूजे पूजे प्रभु खोटे त्यौहार।।४।।
धन पूजाहित दीप जलाए देहली द्वार भूमि पूजी।
आड़े-टेढ़े पत्थर पूजे वटतरु सभी दिशा पूजी।।५।।
सभी दिशाएँ समान होती सभी वार हैं एक समान।
इनमें अच्छे-बुरे भेद से प्रगटित होता है अज्ञान।।६।।
बिल्ली ने रास्ता काटा तो दुःख से डरकर घर आया।
छींक हुई तो महामूढ़ता से वापस घर में आया।।७।।
आदि-आदि देखादेखी लोकमूढ़ता करता हूँ।
सच्चा मार्ग छोड़कर उन्मार्गों पर ही पग धरता हूँ।।८।।
अब प्रभु लोकमूढ़ता तज दूँ बनूँ अमूढ़दृष्टि निर्दोष।
सम्यग्दर्शन सुदृढ़ करूँ प्रभु पाऊँ शाश्वत सुख-संतोष।।९।।
ॐ ह्रीं श्री लोकमूढ़तारहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

बिना मूढ़ता नष्ट किए सम्यक्त्व नहीं होता है शुद्ध ।
देवमूढ़ता गुरुमूढ़ता लोकमूढ़ता घोर अशुद्ध ।।
ये तीनों मूढ़ता त्यागकर बनूँ अमूढ़दृष्टि उत्तम।
भलीभाँति से करूँ परीक्षा लोकमूढ़ता नहीं उत्तम ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री देवगुरुलोकमूढ़तारहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सम्यग्दर्शन के प्रभो, दोष त्याग पच्चीस ।
पूर्ण अर्घ्य अर्पण करूँ, जय-जय हे जगदीश ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचविंशतिदोषविरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(ताटंक)

सम्यग्दर्शन की महिमा है वचन-अगोचर अपरम्पार।
औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक यह होता तीन प्रकार ।।१।।
सात प्रकृति कर्मों की उपशम हों तब उपशम होता है।
छह का उदयभावी क्षय इक उदय क्षयोपशम होता है ।।२।।
इन्हीं सात का क्षय होता जब तब यह क्षायिक होता है।
सम्यग्दर्शन सदा निसर्गज या कि अधिगमज होता है ।।३।।
आत्मीय निश्चय होता है व्यवहार पराश्रित होता है।
जो कुछ भी होता है वह केवल निजबल से होता है ।।४।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, हो समकित की प्राप्ति ।
निज अनुभवरस शुद्ध की, हो अंतर में व्याप्ति ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

समकितयुत अल्प तपस्या भी उत्तम फल देती है।
समकितबिन गहन तपस्या तो भवदुःख फल देती है ।।१।।
ज्यों जलबिन खेती करना तो पूर्ण व्यर्थ होता है।
समकितबिन पुण्यक्रिया का भी नहीं अर्थ होता है ।।२।।

समकितयुत पुण्यभाव से ही अर्थकाम मिलता है।
होता है आत्मबोध भी चारित्रकमल खिलता है ।।३।।
अबतक जो सिद्ध हुए हैं वे सब समकित के बल से।
जो भी भविष्य में होंगे वे भी समकित के बल से ।।४।।
समकित से ही होती है उपलब्धि शाश्वत सुख की।
सामर्थ्य न हो समकित की तो चहुँगति मिलती दुःख की ।।५।।
तत्त्वों की श्रद्धा को ही व्यवहार सुसमकित कहते।
निज आत्मतत्त्व श्रद्धा को निश्चय समकित गुण कहते ।।६।।
होती है मुक्तिसंपदा विकसित समकित के द्वारा।
है समयसाररसपूरित सम्यग्दर्शन की धारा ।।७।।
अष्टांग शुद्धसमकित ही उर में विशुद्धता लाता।
संसारजन्य दुःखरूपी ज्वाला को यही बुझाता ।।८।।
सम्यग्दर्शन की धारा ही जन्म-मरण दुःख हरती।
स्वात्मोपलब्धि पाता जिय उर में अनंत सुख भरती ।।९।।
सम्यक् स्वदृष्टि होती है तो पतन नहीं होता है।
मोहादि विकारीभावों का पूर्ण शमन होता है ।।१०।।
है मूलज्ञानलक्ष्मी का निर्दोष चरित्र सुदाता।
जो समकित पा लेता है वह रत्नत्रयनिधि पाता ।।११।।
जब काललब्धि आती है स्वयमेव निकट आता है।
पापों से रहित बनाता संवेग हृदय भाता है ।।१२।।
पुरुषार्थसाध्य निजश्रद्धा ही समकित उर लाती है।
निजपरिणति रमणीया ही चेतनमन को भाती है ।।१३।।
जय हो सम्यग्दर्शन की जय हो निज आनंदघन की।
जय महाशील गुणधारी मुनियों के पावन घन की ।।१४।।

(वीर)

सम्यग्दर्शन की पूजन का फल पाऊँ सम्यग्दर्शन ।
स्वपरविवेक ज्ञान उर लेकर पाऊँ दृढ़ चारित्रसदन ।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

卐

४. श्री अष्टांग समुच्चय पूजन

(वीर)

सम्यग्दर्शन के आठों अंगों की पूजन करूँ विशेष।
सम्यग्दर्शन अष्ट अंगयुत मैं भी पाऊँ हे परमेश।।
एक अंग भी अगर हीन है तो समकित होता न कभी।
मोक्षमार्ग में जप-तप-संयम अष्ट अंगबिन व्यर्थ सभी।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितादिक अष्टांग सम्यक्‌दर्शन अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री निःशंकितादिक अष्टांग सम्यक्‌दर्शन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री निःशंकितादिक अष्टांग सम्यक्‌दर्शन अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

सम्यक् स्वभावजलधारा निज अंतरंग में लाऊँ।
जन्मादिरोगत्रय क्षयकर सम्पूर्ण मुक्तिसुख पाऊँ।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभावचंदन का मैं शीतल तिलक लगाऊँ।
संसारतापज्वर सारा निजबल से त्वरित भगाऊँ।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांग सम्यग्दर्शनाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभाव-अक्षत् की महिमा उर को भायी है।
अक्षय अखंडपद पाने की रुचि उर में आयी है।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभावपुष्पों की वरमाला पाऊँ नामी।
चिर कामव्यथा को क्षयकर निष्काम बनूँ हे स्वामी।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभाव रस निर्मित चरु चरण चढ़ाऊँगा प्रभु।
ध्रुव तृप्तिप्रदाता शिवपथ पर चरण बढ़ाऊँगा विभु।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभावघृतदीपक जगमग-जगमग मैं पाऊँ।
मोहान्धकार क्षय करके कैवल्यज्ञाननिधि पाऊँ।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।६।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभाव की पावन निजधूप नाथ लाया हूँ।
वसुकर्म नष्ट करने को तुव चरणों में आया हूँ।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।७।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभाव तरुवर पर ही शुद्ध मोक्षफल मिलते।
आनंदामृत के सागर स्वयमेव हृदय में झिलते।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।८।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्स्वभाव -अर्घ्यावलि निरखी है अभ्यंतर में।
पदवी अनर्घ्य पाने के परिणाम जगे अन्तर में।।
अष्टांग सहित समकित की वेला मैं भी पाऊँगा।
अन्तर्पट पर निजपरिणति संग नाचूँगा-गाऊँगा।।९।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(विधाता)

विभावी भाव करके जो कर्म के बंध करता है।
उदय जब कर्म आते तो बंध फिर उर में धरता है।।१।।

सुखी होता न कर्मों से दुःखी होता है कर्मों से।
नरक-पशु-गति में जाता है स्वर्ग में लोभ करता है।।२।।

एक दिन स्वर्ग से गिरता अधोगति में ये जाता है।
भाग्य से पा मनुजभव फिर कर्म खोटे ही करता है।।३।।

परावर्तन ये करता है सतत् पाँचों घोर दुःखमय।
नहीं घबराता है इनसे पुनः ये बंध करता है।।४।।

अगर निज को निरख ले ये तनिक निज को परख ले ये।
तो सम्यग्ज्ञान पाते ही भवोदधि दुक्ख हरता है।।५।।

अगर मिल जाए रत्नत्रय तो यह निर्वाण सुख पाए।
जिनागम घोषणापूर्वक यही जयघोष करता है।।६।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, अष्ट अंग सम्यक्त्व।
साम्यभाव रसपान कर, पाऊँ पूर्ण समत्व।।

जयमाला

(दिग्पाल)

जबतक स्वभावभाव का आदर न करोगे।
तबतक विभावभाव को तुम नहीं हरोगे।।१।।

रागों के राग-मोह दुष्ट से है वास्ता।
इसको विनष्ट किए बिना सुख न भरोगे।।२।।

उर तत्त्वज्ञानदीप जलाओगे तो सुनो।
संसार-देह-भोग से तुम सदा डरोगे।।३।।

जब मोक्षमार्ग पर चलोगे सावधान हो।
शुद्धात्मध्यानशक्ति से भवसिन्धु तरोगे।।४।।

कर्मों के गढ़ को तोड़कर निष्कर्म बनो तुम।
फिर तुम सदा को निजानंद उर में धरोगे।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

अष्ट अंग सम्यग्दर्शन की पूजन की मैंने जिनराज।
समकित पाकर ज्ञान-ध्यान-वैराग्य सजाऊँ उर में आज।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पांञ्जलि क्षिपेत्

卐

भावना शुद्ध हृदय लाऊँ। भावना...
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजा रचवाऊँ। भावना... ।।१।।

स्व-पर विवेक हृदय में धारूँ, करूँ तत्त्वश्रद्धान।
सम्यग्दर्शन प्राप्त करूँ मैं, करूँ आत्मकल्याण।।भावना... ।।२।।

वस्तुस्वरूप यथावत् जानूँ, पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
तेरहविध चारित्र हृदय धर, जिन मुनि बनूँ महान।।भावना... ।।३।।

यथाख्यात चारित्र हेतु मैं, करूँ स्वयं का ध्यान।
अष्टकर्म सम्पूर्ण नष्ट हो पाऊँ केवलज्ञान।।भावना...।।४।।

रत्नत्रय की भक्ति प्राप्त कर, गाऊँ मंगलगान।
एक दिवस निश्चित ही होंगे, सर्व कर्म अवसान।।भावना...।।५।।

रत्नत्रय के बिना मुक्ति का मार्ग नहीं मिलता।
रत्नत्रय के बिना सिद्धपद, हृदय नहीं झिलता।।भावना...।।६।।

५. श्री निःशंकित अंग पूजन

(दोहा)

यह निःशंकित अंग ही, है समकित का मूल।
भावसहित पूजन करूँ, हो निज के अनुकूल।।

(वीर)

आत्मस्वभाव मोक्ष का कारण यह निःशंक श्रद्धा उर धार।
यही मूल है आत्मधर्म का ये ही ले जाता भवपार।।
सकल कुशंकाओं से विरहित है निःशंकित अंग महान।
स्वपरविवेकपूर्वक मैं भी करूँ आत्मा का श्रद्धान।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःशंकितांग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःशंकितांग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःशंकितांग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(ताटंक)

निःशंकितजल की पा धारा। जन्मादिरोग नाशूँ सारा।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितचंदनतिलक लगा। संसारताप दूँ दूर भगा।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितअक्षतशालि मिलें। अन्तर्मन के निजकमल खिलें।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितपुष्पसुगंध मिले। कामाग्नि नाश गुणशील झिले।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितसुचरु सरस लाऊँ। चिर क्षुधाव्याधि को विनशाऊँ।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितदीपप्रकाश करूँ। मिथ्यात्व मोहतम नाश करूँ।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितध्यान धूप लाऊँ। वसुकर्म नाश शिवपुर जाऊँ।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितनिजतरुफल लाऊँ। ध्रुव श्रेष्ठ मोक्षफल प्रभु पाऊँ।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निःशंकितअर्घ्य बनाऊँगा। पदवी अनर्घ्य प्रगटाऊँगा।।
सम्यग्दर्शन उर में लाऊँ। आनंद अतीन्द्रिय प्रभु पाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

卐 सात भय रहित सम्यग्दर्शन 卐

१. इहलोकभय रहित सम्यग्दर्शन

(गीतिका)

इह लोक भय से ग्रसित प्राणी दुःखी ही रहते सदा।
सतत आतंकित रहा करते जगत में सर्वदा।।
इहलोकभय को छोड़कर सम्यक्त्व का वैभव परख।
पूर्ण निर्भय बन सदा को शुद्ध आत्मस्वरूप लख।।

ॐ ह्रीं श्री इहलोकभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. परलोकभय रहित सम्यग्दर्शन

परलोकभय से जो ग्रसित हैं दुःखी रहते सर्वदा।
सतत भय से डरा करते ज्ञान निज हरते सदा।।

परलोकभय को छोड़कर सम्यक्त्व का वैभव परख।
तथा निर्भय बन सदा को शुद्ध आत्मा को निरख।।
ॐ ह्रीं श्री परलोकभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. मरणभय रहित सम्यग्दर्शन

मरणभय से जो ग्रसित हैं दुःखी है जीवन सदा।
मृत्यु से हैं सतत् आतंकित अरे वह सर्वदा।।
मरणभय को छोड़ दे बन जाएगा मृत्युंजयी।
शुद्ध निजवैभव निरख तू ज्ञान-दर्शनगुणमयी।।
ॐ ह्रीं श्री मरणभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. वेदनाभय रहित सम्यग्दर्शन

वेदनाभय सताता है तुझे मूरख सर्वदा।
सतत आतंकित हृदय है दुःखी है प्राणी सदा।।
वेदनाभय छोड़कर शुद्धात्म का वैभव परख।
सतत निर्भय बन सुचेतन निजस्वभाव सदा निरख।।
ॐ ह्रीं श्री वेदनाभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. अरक्षाभय रहित सम्यग्दर्शन

अरक्षाभय से ग्रसित है खोजता है अभयथल।
सतत आतंकित हृदय में नष्ट करता आत्मबल।।
अरक्षाभय त्यागकर तू प्राप्त समकित शुद्ध कर।
सतत निर्भय बन सदा को आत्मज्ञान विशुद्ध धर।।
ॐ ह्रीं श्री अरक्षा भयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. अगुप्तिभय रहित सम्यग्दर्शन

ग्रसित मूढ़ अगुप्तिभय से गुप्त रहना चाहता।
ज्ञान की अवहेलना कर मुक्त होना चाहता।।
छोड़ सर्व अगुप्तिभय को पूर्ण श्रद्धा हृदय धार।
सतत् निर्भय बन सदा को प्राप्त कर ले सुख अपार।।
ॐ ह्रीं श्री अगुप्तिभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. अकस्मातभय रहित सम्यग्दर्शन

अकस्माती भय सताता सदा मिथ्यादृष्टि को।
अकस्माती भय न होता कभी सम्यग्दृष्टि को।।

अकस्मात महान भय तज प्राप्त कर आनंद अपार।
सतत निर्भय हो सदा को आत्मश्रद्धा हृदय धार।।
ॐ ह्रीं श्री अकस्मात भयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सात भयों को जीतकर, पाऊँ समकित शुद्ध।
सप्ततत्त्व श्रद्धान कर, पाऊँ ज्ञान विशुद्ध।।
पूर्ण अर्घ्य अर्पण करूँ, निर्भय होकर देव।
आप कृपा से हे प्रभो, पाऊँ सौख्य अमेव।।
ॐ ह्रीं श्री सप्तभयरहितसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

स्वपरज्ञानपति समदृष्टि ही होते हैं अत्यंत निःशंक।
इनको रंच नहीं लगती है संशयादि विभ्रम की पंक।।१।।
तत्त्वों में शंकादि दोष का अभाव ही निःशंकित अंग।
नहीं कभी अणुभर भय होता तब होता यह निर्मल अंग।।२।।
करूणा, मैत्री, सज्जनता, धर्मानुराग, श्रद्धा बलवान।
समता, उदासीनता, अपनी लघुता, वसुगुण युक्त महान।।३।।
तत्त्वभूत सत्यार्थ स्वरूप जानते हैं समकित धारी।
संशय रहित स्वरूचि के स्वामी ही होते हैं अविकारी।।४।।
ऐसे समकित की रज भी पाऊँ तो धारूँ मस्तक पर।
सप्त स्वरों की बजा बाँसुरी गाऊँ मैं समकित के स्वर।।५।।
अपनी आत्मा की निःशंक श्रद्धा करना ही निश्चय धर्म।
आत्मस्वरूप निःशंक जानना ही निःशंकित अंग का मर्म।।६।।
ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(शार्दूलविक्रीडित)

भाते जो निःशंक भावना वे एकत्वधन के धनी।
पर से तो संबंध तोड़ करके निज में चले जाएँगे।।
भवतट छोड़ आत्मतट पर आए स्वबल से प्रभो।
करते हैं भगवान सिद्ध स्वागत एकत्वसम्राट का।।१।।

(दीनबन्धु)

जिसने किया श्रद्धान वह भगवान हो गया।
अपना स्वरूप जानकर महान हो गया।।१।।
चारों कषाय क्षीण करके मोह जय किया।
अरहंतदशा प्राप्तकर प्रधान हो गया।।२।।
संसार का अभाव करके सिद्धपद लिया।
क्रम-क्रम से पाँच बंध का अवसान हो गया।।३।।
अपनी स्वभावशक्ति से जाता है सिद्धपुर।
अन्तर्मुहूर्त में उसे निर्वाण हो गया।।४।।
हम भी यही करेंगे यह निश्चय किया है आज।
हमको भी आज हे प्रभो निजज्ञान हो गया।।५।।

ॐ ह्रीं श्री निःशंकितांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

निःशंकित अंग की पूजन कर उर में जागा यह भाव।
निःशंकित समकित पाऊँ मैं शंकाओं का करूँ अभाव ।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

भजन

जहाँ-जहाँ ज्ञान है वहीं-वहीं आत्मा।
जहाँ ज्ञान नहीं है वहाँ नहीं आत्मा।।
जहाँ नहीं आत्मा वहाँ ज्ञान भी नहीं।
जहाँ पूर्ण शुद्ध ज्ञान वहाँ परमात्मा।।
जहाँ ज्ञान भरा है वहीं तो है आत्मा।
जहाँ मिथ्याज्ञान है वहाँ बहिरात्मा।।
जहाँ ज्ञान प्रगटा है वहाँ अन्तरात्मा।
पूर्ण ज्ञान प्रगटा है होता परमात्मा।।

ॐ

६. श्री निःकांक्षित अंग पूजन

(दोहा)

द्वितीय अंग निःकांक्षित, पूजा करूँ विशेष।
इच्छाओं को जीतकर, शुद्ध बनूँ परमेश।।
पूर्ण शुद्ध सम्यक्त्व की, महिमा अपरम्पार।
पलभर में मिथ्यात्व हर, देता सौख्य अपार।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःकांक्षितांग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःकांक्षितांग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निःकांक्षितांग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सखी)

निःकांक्षितजल अब लाऊँ। इच्छा विहीन हो जाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। जन्मादिरोगत्रय लूँ हर।।१।।

ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निःकांक्षितचंदन लाऊँ। इच्छा विहीन हो जाऊँ।।
अब पूर्ण अनिच्छुक बनकर। संसारतापज्वर लूँ हर।।२।।

ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षिततांगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निःकांक्षितअक्षत लाऊँ। इच्छा विहीन हो जाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। अक्षयपद पाऊँ सत्वर।।३।।

ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निःकांक्षितपुष्प सजाऊँ। इच्छाओं पर जय पाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। कामाग्नि बुझाऊँ सत्वर।।४।।

ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निःकांक्षितसुचरु चढ़ाऊँ। इच्छाओं पर जय पाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। जठराग्नि बुझाऊँ सत्वर।।५।।

ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षिततांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निःकांक्षितज्योति जगाऊँ। इच्छाओं पर जय पाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। मोहाग्नि बुझाऊँ जिनवर।।६।।
ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
निःकांक्षितधूप चढ़ाऊँ। इच्छा विरहित हो जाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। कर्माग्नि बुझाऊँ जिनवर।।७।।
ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय अष्टकर्मविध्वसंनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
निःकांक्षिततरूफल लाऊँ। इच्छा विरहित हो जाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। फल सहज मोक्ष लूँ जिनवर।।८।।
ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
निःकांक्षितअर्घ्य बनाऊँ। इच्छा विरहित हो जाऊँ।।
प्रभु पूर्ण अनिच्छुक बनकर। पदवी अनर्घ्य लूँ जिनवर।।९।।
ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

१. इहलोकसुखवाञ्छा रहित

(गीतिका)

इहलोकसुख की वाञ्छा के लोभ से स्वामी बचूँ।
पंचइन्द्रिय विनश्वर सुख की न इच्छा उर रचूँ।।
अंग निःकांक्षित सदा पालूँ प्रभो मैं चाव से।
पूर्ण समकित प्राप्त करके जुडूँ आत्मस्वभाव से।।
ॐ ह्रीं श्री इहलोकसुखवाञ्छारहितनिःकांक्षितांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. परलोकसुखवाञ्छा रहित

परलोकसुख की वाञ्छा के दोष से हे प्रभु बचूँ।
विनश्वर साता विभावी की न छवि उर में रचूँ।।
अंग निःकांक्षित सदा पालूँ प्रभो मैं चाव से।
पूर्ण समकित प्राप्त करके जुडूँ आत्मस्वभाव से।।
ॐ ह्रीं श्री परलोकसुखवाञ्छारहितनिःकांक्षितांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. भोगआकांक्षा रहित

भोग भोगे हैं अनन्तों और पाये बहुत दुःख।
भोगआकांक्षा तजूँ प्रभु प्राप्त हो निज आत्मसुख।।

अंग निःकांक्षित सदा पालूँ प्रभो मैं चाव से।
पूर्ण समकित प्राप्त करके जुडूँ आत्मस्वभाव से।।
ॐ ह्रीं श्री भोगकांक्षारहितनिःकांक्षितांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. उपभोगआकांक्षा रहित

उपभोग-आकांक्षा सदा से महादुःख देती रही।
किन्तु यह उपभोग इच्छा निज अन्तर से ना गई।।
अंग निःकांक्षित सदा पालूँ प्रभो मैं चाव से।
पूर्ण समकित प्राप्त करके जुडूँ आत्मस्वभाव से।।
ॐ ह्रीं श्री उपभोगकांक्षारहितनिःकांक्षितांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

परद्रव्यों में रागरूप इच्छा-अभाव निःकांक्षित अंग।
आत्मद्रव्य में ही रहता है निर्मल शुद्धभाव के संग।।१।।
सर्ववांछाओं से विरहित सम्यग्दृष्टि ही निष्कांक्षी।
कर्मफलों की रंच न वांछा ज्ञातादृष्टा है निष्कांक्षी।।२।।
धर्मधार सांसारिक सुख की इच्छा का है यदि सद्भाव।
तो निश्चित सम्यक्त्व नहीं है निःकांक्षा का जहाँ अभाव।।३।।
ॐ ह्रीं श्री निःकांक्षितांगायअनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

पहले दूजे तीजे में तो प्रतिमा होती कभी नहीं।
चौथे गुणस्थान अविरति में भी प्रतिमा का भाव नहीं।।१।।
पहली प्रतिमा लेते ही होता है गुणस्थान पंचम।
ग्यारहवीं प्रतिमा तक कहलाता है एकदेशसंयम।।२।।
पूर्ण देशसंयम लेते ही गुणस्थान होता सप्तम।
फिर यह निर्बलता के कारण पाता गुणस्थान षष्टम।।३।।
इन दोनों में झूला करता जब तक श्रेणी चढ़े नहीं।
निज परिणामों की सम्हाल बिन कोई आगे बढ़े नहीं।।४।।
फिर यह अष्टम में जाता है झट उपशमश्रेणी पाता।
नवम दशम ग्यारहवाँ पाता ग्यारहवें से गिर जाता।।५।।

गिरते ही यह त्वरित सँभलता सप्तम षष्टम में रुकता।
फिर पुरुषार्थ जगाता अपना निजस्वरूप के प्रति झुकता।।६।।
फिर अष्टम से क्षायिकश्रेणी पर तत्क्षण चढ़ जाता है।
नवम दशम पा लाँघ ग्यारवाँ बारहवाँ पा जाता है।।७।।
मोह क्षीण करता है तत्क्षण कर्म घातिया क्षय करता।
झट तेरहवाँ पा लेता है केवलज्ञानलब्धि वरता।।८।।
फिर ये चौदहवें में जाता कर्म अघाति नाश करता।
गुणस्थान से हो अतीत फिर सिद्ध स्वपद सादर वरता।।९।।
आज हुआ पक्षातिक्रान्त यह नयातीत हो गया चिदेश।
सादिअनंतानंत काल तक निजरस पाएगा सिद्धेश।।१०।।
यदि रत्नत्रय की स्वभक्ति से चेतन होगा ओत-प्रोत।
तो निश्चय ही एक दिवस पाएगा निजशिवसुख का स्रोत।।११।।

(वीर)

निःकांक्षित अंग की पूजनकर हृदय हुआ हे प्रभो प्रसन्न।
सकल वांछाएँ क्षयकरके समकित से होऊँ सम्पन्न ।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिंक्षिपेत्

卐

सप्ततत्त्व की श्रद्धा जागी जागी निज की प्रीत।
अनंतानुबंधी को जयकर लिया विश्व को जीत।।

भेदज्ञान का वैभव पाया सुना आत्मसंगीत।
स्व-पर विवेक जगा अंतर में परपरिणति भयभीत।।

इष्ट-अनिष्ट, सुहाती समता वस्तुस्वरूप विचार।
आज विजय का पर्व अनूठा मंगलमय सुखकार।।

ॐ

७. श्री निर्विचिकित्सा अंग पूजन

(दोहा)

निर्विचिकित्सा तीसरा, अंग प्रधान महान।
पूजन करके हे प्रभो, करूँ कर्म अवसान।।
सम्यग्दर्शन की प्रभा, हरती भवदुःख क्लेश।
आप कृपा से है प्रभो, धारूँ जिनमुनिवेश।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निर्विचिकित्साअंग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निर्विचिकित्साअंग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य निर्विचिकित्साअंग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपई)

निर्मल जल स्वभाव मलहीन। हरता जगत रोग यह तीन।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज-पर का कल्याण।।१।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चंदन शीतलगुण पूर्ण। भवाताप हरता सम्पूर्ण।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज-पर का कल्याण।।२।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षतगुण अनंत भंडार। करता है भवसागर पार।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज-पर का कल्याण।।३।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानपुष्प अनुपम अनमोल। कामबाण सब हरते तोल।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज-पर का कल्याण।।४।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रसमय निज नैवेद्य। क्षुधारोग हरते बन वैद्य।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज-पर का कल्याण।।५।।

ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिमिर विनाशक दीप प्रजाल। हरूँ मोहभ्रम का जंजाल।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज–पर का कल्याण।।६।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
शुक्लध्यान की धूप अनूप। हरती अष्टकर्म दुःखरूप।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज–पर का कल्याण।।७।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
शुक्लध्यान फल मोक्ष महान। परम सौख्यदाता अमलान।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज–पर का कल्याण।।८।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।
उत्तम शुद्ध अर्घ्य अविकार। पद अनर्घ्य दाता साकार।।
निर्विचिकित्सा अंग महान। करता निज–पर का कल्याण।।९।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(शार्दूलविक्रीडित)

सुनते–सुनते एक बात सुन लो समकित बिना सुख नहीं।
संशय विभ्रम विनय घोर एकान्त अज्ञान समदुःख नहीं।।१।।
जब तक है यह मोह दुष्ट उर में सम्यक्त्व होगा नहीं।
कोई भी तो भेद–ज्ञान के बिन होता स्वसन्मुख नहीं।।२।।

(उपजाति)

परभाव मुझको दुःख दे रहे हैं, निजभाव मैंने जाना नहीं है।
मैं हूं त्रिकाली ध्रुवधामवासी, मैंने कभी भी माना नहीं है।।३।।
निज ज्ञानधारा से हो विभूषित, अब मैं बनूँगा निज आत्मध्यानी।
चारों कषायों को क्षीण करके, हो जाऊँगा मैं कैवल्यज्ञानी।।४।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्सांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

पर द्रव्यों में द्वेषरूप जो ग्लानि उसी का करूँ अभाव।
निजस्वभाव से प्रीत बढ़ाऊँ प्राप्त करूँ निज शुद्धस्वभाव।।१।।
द्वेष अरोचक भाव न हो प्रभु शुद्धातम से करूँ न द्वेष।
सतत प्रतीति सुदृढ़ हो निज की निज से ही हो प्रेम विशेष।।२।।

मुनि का तन यदि मलिन दिखे तो निर्मल उसे बनाऊँ नाथ।
मुनि तन का मल–मूत्र आदि सब बिना घृणा फेंकूँ निज हाथ।।३।।
सेवा का हो भाव हृदय में विचिकित्सा का दोष नहीं।
जब तक रोग दूर ना होवे तो उसमें संतोष नहीं।।४।।
इस जड़ तन के सभी द्वार नौ घोर घृणामय हैं अपवित्र।
यदि रत्नत्रय की प्रतीति जागे तो हो जाये देह पवित्र।।५।।
रत्नत्रयधारी की काया तो होती है सदा पवित्र।
चाहे जैसी अशुचि लगी हो होती कभी न वह अपवित्र।।६।।
द्वेष रूप भवमय विकल्प की सभी तरंगों का हो त्याग।
निर्मल स्वानुभूति हो उर में शुद्धात्मा से हो अनुराग।।७।।
कभी घृणा का भाव हृदय में मेरे स्वामी उदय न हो।
कुत्सितभाव न आएँ उर में दूषित मेरा हृदय न हो।।८।।
निर्विचिकित्सा अंग पालकर सम्यग्दर्शन पुष्ट करूँ।
घृणा द्वेष ग्लानि को हर मिथ्यात्वभाव का कष्ट हरूँ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री निर्विचिकित्साअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

निर्विचिकित्सा अंग पूजन कर करूँ स्वयं का प्रभु कल्याण।
सम्यग्दर्शन की महिमा से पाऊँगा ध्रुवपद निर्वाण।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

हिंसा–झूठ–कुशील–परिग्रह सभी हुए बेकार।
न्याय–नीति को जाना मैंने किया आत्म शृंगार।।
विषय–वासना की छलनाएँ हुई क्षणिक में क्षार।
तीव्र कषायभाव का मैंने किया पूर्ण परिहार।।
कुमति पिशाचिन भागी घर से गाती सुमति मल्हार।
आज विजय का पर्व अनूठा मंगलमय सुखकार।।

८. श्री अमूढ़ दृष्टि अंग पूजन

(रोला)

अंग अमूढ़दृष्टि की पूजन करता हूँ प्रभु।
तीन मूढ़ताएँ विवेक से हरता हूँ विभु।।
देवमूढ़ता है अनादि से भवदुःखकारी।
गुरुमूढ़ता है सदैव से अनिष्टकारी।।
लोकमूढ़ता देखा-देखी कुछ भी करना।
आत्मधर्म की महिमा अपने हाथों हरना।।
इन तीनों का त्याग करूँ मिथ्यातम नाशूँ।
सम्यग्दर्शन पूर्ण भावमय हृदय प्रकाशूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य अमूढ़दृष्टि अंग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य अमूढ़दृष्टि अंग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य अमूढ़दृष्टि अंग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(विधाता)

साम्यभावी स्वजल लाऊँ परम निर्मल मैं हो जाऊँ।
जन्म-मरणादि दुःख क्षयकर शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी स्वचंदन की सुगंधित निज पवन लाऊँ।
राग संसार का क्षयकर शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यवादी स्वअक्षत पा करूँ मैं पार भवसागर।
स्वपद अक्षय प्रकट करके ध्रौव्य सुख लाभ हो सत्वर।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी कुसुम लाऊँ काम की पीर विनशाऊँ।
महा गुण लाख चौरासी शीघ्र उर मध्य प्रगटाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी स्वरसमय चरु भावना पूर्वक लाऊँ।
क्षुधा का रोग विनशाऊँ शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी दीप जगमग हृदय में नाथ प्रगटाऊँ।
मोह मिथ्यात्व की आँधी सदा को नाथ विघटाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी धूप लाऊँ कर्म सम्पूर्ण विघटाऊँ।
प्रभो निर्भार हो जाऊँ शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी स्वरसमय फल अंतरंगी हृदय लाऊँ।
मोक्षफल प्राप्तकर के प्रभु शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभावी अर्घ्य अनुपम भावमय शीघ्र ही लाऊँ।
स्वपद पाऊँ अनर्घ्य अपना शाश्वत ध्रौव्य सुख पाऊँ।।
तजूँ मिथ्यात्व पाँचों प्रभु पंच प्रत्यय पे जय पाऊँ।
अमूढ़दृष्टि बनूँ स्वामी पूर्ण समकित हृदय लाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(शार्दूलविक्रीडित)

जो हैं मूढ़ अजान जीव वे ही सुख खोजते बाह्य में।
शाश्वत सुख तो है सदैव भीतर उनको पता ही नहीं।।१।।
यदि निरखें निज आत्मतत्त्व को तो दृष्टिबदल जाएगी।
पाएँगे सुख स्रोत सिन्धु निज में आत्मा सँभल जाएगी।।२।।
शाश्वत तो है आत्मतत्त्व केवल संसार है नाशमय।
इसका ही आश्रय महान सुन्दर सम्यक्त्वदाता सदा।।३।।
इसका ही श्रद्धान ज्ञान हो तो वैराग्य आता हृदय।
इसमें ही यदि रमण सतत् हो तो चरित्र है ज्ञानमय।।४।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, तजूँ मूढ़ता देव।
सम्यग्दर्शन प्राप्तकर, सिद्ध बनूँ स्वयमेव।।५

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीर)

तत्त्वों में रुचिवंत पुरुष मूढ़ता रहित करते श्रद्धान।
उपादेय निज, हेयतत्त्व पर, की करते सम्यक् पहिचान।।१।।
सम्यग्दर्शन श्रेष्ठरत्न है खंडित होता कभी नहीं।
सम्यग्दृष्टि मूढ़भावों से मंडित होता कभी नहीं।।२।।
देवाभास नहीं है उर में धर्माभास नहीं उर में।
नहीं गुरु आभास हृदय में आत्मधर्म है निजपुर में।।३।।
पर परिणति के भँवरजाल में मूढ़दृष्टि फँस जाते हैं।
और अंततोगत्वा मरकर वे निगोद दुःख पाते हैं।।४।।

निज परिणति की संगति पाकर जो भी निज को ध्याते हैं।
सम्यग्दृष्टि वही होते हैं भवभ्रम पूर्ण मिटाते हैं।।५।।
निश्चय का ही अवलंबन है रंच नहीं व्यवहाराभास।
कुगुरु कुदेव कुधर्ममूढ़ता का क्षय कर दूँ दुःखमय त्रास।।६।।
जो विमूढ़ हैं पर में उसके भीतर बैठा है अज्ञान।
विविध मूढ़ताओं से दूषित कैसे पाएँ सम्यग्ज्ञान।।७।।
बनूँ अमूढ़दृष्टि मैं भी प्रभु सम्यग्दर्शन पाऊँ पूर्ण।
स्वानुभूति से परिणय करके शाश्वत सुख पाऊँ अपूर्ण।।८।।
मिथ्यामार्गी कुमार्गियों की कभी प्रशंसा करूँ नहीं।
मन वच काया से इनकी अणुभर अनुशंसा करूँ नहीं।।९।।
समकित का यह अंग पाँचवाँ सत्पथ देता है बिन श्रम।
भेद ज्ञान विज्ञान पूर्वक ही होता यह परमोत्तम।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री अमूढ़दृष्टिअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

अंग अमूढ़दृष्टि की पूजन करके सम्यक् पथ पाऊँ।
निर्मल सम्यग्दर्शन पाकर मोक्षमार्ग पर आ जाऊँ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

प्रकट स्वरूपाचरण हुआ है ज्यों चंदा की कोर।
ज्ञानदूज पायी है मैंने चलूँ पूर्णिमा ओर।।

निजपरिणति संग नाचूँ-गाऊँ चले न पर का जोर।
पावन समकित शीतल चंदन का गूँजा है शोर।।

भव का अंत निकट आया अब बूँद मात्र संसार।
आज विजय का पर्व अनूठा मंगलमय सुखकार।।

८. श्री उपगूहन अंग पूजन

(कुण्डलिया)

यह उपगूहन अंग ही, करता पर उपकार।
सम्यग्दर्शन पूर्ण ही, ले जाता भवपार।।
ले जाता भवपार दोष न कहता सबके।
थोड़े से गुण भी हों तो प्रगटाता सबके।।
विनयभक्ति से भावसहित करता हूँ पूजन।
सभी प्राणियों का हित करता यह उपगूहन।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य उपगूहनांग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य उपगूहनांग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य उपगूहनांग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

शिवसुख आशासरिता से पावन जल निर्मल लाऊँ।
जन्मादि रोग क्षय करके उज्ज्वलता हृदय सजाऊँ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।१।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता से ध्रुव शीतल चंदन लाऊँ।
संसारताप सब क्षयकर शीतलता हृदय सजाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।२।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता से अक्षत गुण उज्ज्वल लाऊँ।
अक्षयपद प्राप्त करूँ मैं आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।

परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।३।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता से गुणपुष्प अपूर्व मँगाऊँ।
चिर कामबाण दुःख नाशूँ गुण महाशील प्रभु पाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।४।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांग कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता के निज रसमय सुचरु चढ़ाऊँ।
चिर क्षुधाव्याधि विनशाऊँ पद निराहार निज पाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।५।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता के दीपक निज हृदय जगाऊँ।
चिर मोहभ्रान्ति को नाशूँ कैवल्यज्ञाननिधि पाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।६।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता से निज धूप ध्यानमय लाऊँ।
ध्रुव नित्य निरंजन पद या अब अष्टकर्म विनशाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।७।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता पर क्षायिकसमकितनिधि पाऊँ।
जगदाग्नि बुझाऊँ स्वामी ध्रुवधाम मोक्षफल पाऊँ ।।
परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।८।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शिवसुख आशासरिता पर वसुविध गुणअर्घ्य बनाऊँ।
पदवी अनर्घ्य निज पाऊँ आनंदसिन्धु उर लाऊँ ।।

परदोष न कहने का ही कर्त्तव्य समकिती जन का।
समकित की ऊर्जा पाना फल उत्तम उपगूहन का।।९।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(दिग्वधू)

रागादि भावहिंसा भवदुःख का मूल जानो।
शुभभाव भी अगर है तो उसको भूल मानो।।१।।
मिथ्यात्व परिग्रह ही सबसे बड़ा परिग्रह।
चौबीस परिग्रह तज व्रत धारो अपरिग्रह।।२।।
वस्तुस्वरूप जैसा वैसा ही सदा मानो।
परभाव ग्रहण करना चोरी का पाप जानो।।३।।
विपरीत मान्यता को तो तुम असत्य जानो।
परभावों में विचरण है तो कुशील मानो।।४।।
ये पंचपाप तज दो तो शुद्धमहाव्रत हो।
संसार नाश होकर ध्रुव मोक्षमहापद हो।।५।।
उपगूहन अंग सहित सम्यक्त्व पाऊँ नामी।
निज आत्मप्रशंसा तज निज को ही ध्याऊँ स्वामी।।६।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

प्रभु उपगूहन अंग धारकर सम्यग्दर्शन सुदृढ़ करूँ।
गुणीजनों की करूँ प्रशंसा निन्दादिक के भाव हरूँ।।१।।
परनिन्दा का भाव न हो प्रभु आत्मप्रशंसा दोष न हो।
पर के दोष भी ना बोलूँ तो उनसे आगे दोष न हो।।२।।
श्रावकजन से दोष अगर हो तो मैं उनको समझाऊँ।
किन्तु न उनके दोष प्रकटकर अल्प पाप भी उपजाऊँ।।३।।
मुनि से अगर दोष हो जाए तो मैं ना कहूँ भलीप्रकार।
मुनियों की निन्दा न हो सके ऐसा करूँ सदैव विचार।।४।।
दोषीजन के दोषों का मैं करूँ न स्वामी कभी प्रचार।
उनके गुण का वर्णन ही है उनके दोषों का परिहार।।५।।

आत्मधर्म जिनधर्म वृद्धि का ही मैं स्वामी करूँ उपाय।
क्षमा मार्दव संतोषादिक शुद्धभावना हो सुखदाय।।६।।
उर उपवृंहण अंग हो सम्यक् गुणीजनों का हो सम्मान।
सतत निरंतर शुद्धभाव का ही हो अंतर में बहुमान।।७।।
आत्मधर्म की वृद्धि हेतु प्रभु तज दूँ सब संकल्प विकल्प।
निजगुण की बढ़वारी करके हो जाऊँ स्वामी अविकल्प।।८।।
धर्माभास नहीं हो हे प्रभु गुरु आभास नहीं हो रंच।
नहीं देवआभास हृदय हो करूँ न ऐसे कभी प्रपंच।।९।।

ॐ ह्रीं श्री उपगूहनांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

उपगूहन अंग पूजकर करूँ स्वयं का प्रभु कल्याण।
सम्यग्दर्शन की महिमा से पाऊँगा ध्रुव पद निर्वाण।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

छोटे-छोटे मुनिवर हो गये निहाल।
निजपरिणति का देखो तो कमाल।।
आठ वर्ष में ही दीक्षा धार ली विशाल।
नवें वर्ष पाया ज्ञान तत्काल। निज....
पंच महाव्रत धारे अणुव्रत धार।
संयम के रथ पर हो गये सवार।।
सम्यक्त्वाचरण पाया आ गया स्वकाल। निज...
चार घातिया विनाश हुए सर्वज्ञ।
अपने में रहकर हुए आत्मज्ञ।।
अघातिया विनाश बने त्रिभुवन भाल। निज...

ॐ

८. श्री स्थितिकरण अंग पूजन

(सरसी)

षष्टम स्थितिकरण अंग की महिमा पाऊँ मैं।
धर्म मार्ग से डिगने वालों को समझाऊँ मैं।।
उन्हें मार्ग पर लाकर मैं उनका कल्याण करूँ।
इसमें ही अपना हित समझूँ अरु दुःख का अवसान करूँ।।
स्थितिकरण अंग की पूजन करता हूँ सविनय।
सम्यग्दर्शन अखंड पाकर पाऊँ सौख्य निलय।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य स्थितिकरणांग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य स्थितिकरणांग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य स्थितिकरणांग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान जल लाऊँ आज।
जन्म जरा मरणादि व्याधि हर पाऊँ शाश्वत निज पदराज।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।१।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान चंदन लाऊँ।
यह संसारतापज्वर नाशूँ शीतलता उर प्रगटाऊँ।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।२।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान अक्षत लाऊँ।
उत्तम अक्षयपद प्रगटाकर भवसमुद्र यह तर जाऊँ।।

स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।३।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान के पुष्प सजा।
कामबाण विध्वंस करूँ मैं नाचूँ गाऊँ वाद्य बजा।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।४।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान चरु लाऊँ आज।
क्षुधारोग हर स्वपद अनाहारी उत्तम पाऊँ जिनराज।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।५।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान दीपक लाऊँ।
महामोह मिथ्यात्वतिमिर हर केवलज्ञानसूर्य पाऊँ।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।६।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान की लाऊँ धूप।
अष्टकर्म सम्पूर्ण चूर्णकर प्रगटाऊँ निज आत्मस्वरूप।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।७।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी शुक्लध्यान के फल पाऊँ।
निज पुरुषार्थशक्ति के बल से महामोक्षफल पा जाऊँ।।
स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात।।८।।

ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्विकल्प होने को स्वामी अर्घ्य अपूर्व बनाऊँ आज।
निरुपम पद अनर्घ्य प्रगटाऊँ पाऊँ अपना सुख साम्राज्य।।

स्थितिकरण अंग की महिमा जिनआगम में है विख्यात।
धर्ममार्ग से डिगते प्राणी को सुस्थिर रखना प्रख्यात ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(मानव)

निज आत्मतत्त्व श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन मनभावन।
निज आत्मज्ञान ही उत्तम है सम्यग्ज्ञान सुपावन ।।१।।
निज आत्मब्रह्म में चर्या करना चारित्र सुहावन।
ये ही निश्चय रत्नत्रय हरता है भव के बंधन ।।२।।
इसके बिन कभी न मिलता है मोक्षमार्ग प्राणी को।
इसके बिन शिवपथ दुर्लभ संसारी अज्ञानी को ।।३।।
इसका ही आश्रय लेकर भव्यात्मा शिवपथ पाते।
इसकी ही परमभक्ति से वे मुक्तिभवन में जाते ।।४।।
जो डिगते हों जिनपथ से उनको मैं सुथिर बनाऊँ।
निज स्थितिकरण करूँ प्रभु आत्मोत्पन्न सुख पाऊँ ।।५।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, अस्थिरता कर भंग।
समकित बिन होता नहीं स्थितिकरण सुअंग ।।
ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगायअनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

यह स्थितिकरण अंग दृढ़ अति उत्तम है समकित का।
समकित को सुदृढ़ बनाता यह मार्ग सदा निज हित का ।।१।।
अपने स्वभाव में अपने को सुस्थित करूँ सदा प्रभु।
अपने को और अन्य को जिनपथ पर सुथिर करूँ विभु ।।२।।
प्रभु स्थितिकरण अंग को मैं अपने कंठ लगाऊँ।
डिगते साधर्मी जन को मैं धर्ममार्ग पर लाऊँ ।।३।।
यदि निर्धन है तो उसको धन से सम्पन्न बनाऊँ।
रोगी है कोई भाई तो उसे निरोग कराऊँ।।४।।

कामादि विकारों से जो पीड़ित है मैं समझाऊँ।
दृढ़ करूँ धर्म के पथ पर मैं भी प्रभु दृढ़ हो जाऊँ ।।५।।
भय के कारण डिगता हो यदि साधर्मीजन कोई।
निर्भय मैं उसे बनाऊँ फिर भय न रहेगा कोई ।।६।।
भूखा हो कोई भाई तो भोजन उसे कराऊँ।
वस्त्रादि भेंट कर उसको अपने समकक्ष बनाऊँ ।।७।।
हो भेद न साधर्मी में हो प्रेम सभी से मेरा।
मैं तो अब ऋषिमुनियों का हो जाऊँ स्वामी चेरा ।।८।।
जो दीन-दुखी हैं उनका भी सारा कष्ट मिटाऊँ।
मिथ्यात्व मोहक्षय के हित आत्मोन्मुख उन्हें बनाऊँ ।।९।।
सुस्थिर स्वरूप में अपने को सुस्थित कर हर्षाऊँ।
जितने विभाव हैं उनको पल भर में नाथ भगाऊँ ।।१०।।
जो धर्ममार्ग से विचलित होते हों उन्हें सुथिर कर।
हर्षित होऊँ अपने को निज आत्मा में थापित कर ।।११।।
ॐ ह्रीं श्री स्थितिकरणांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

स्थितिकरण अंग की पूजन कर निज में सुस्थिर होऊँ।
भवभ्रम क्षय की मनोकामना पूरी हो तो सुख जोऊँ ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

परम शान्ति उर में छायी है पाया सत्य स्वरूप।
नाश हुआ मिथ्यात्व सदा को लखा शुद्धतप रूप ।।
रागादिक पुद्गल विकार से मैं हूँ भिन्न अनूप।
ध्रुव चैतन्यस्वभावी हूँ मैं तो त्रिभुवन का भूप ।।
मुक्तिवधू ने आमंत्रण दे गाए मंगलाचार।
आज विजय का पर्व अनूठा मंगलमय सुखकार ।।

८. श्री वात्सल्य अंग पूजन

(दोहा)

वात्सल्य के अंग की, महिमा जग विख्यात।
वात्सल्य का भाव ही, उर में हो दिन-रात।।१।।
गौ बछड़े सम प्रीति, हो साधर्मी से नाथ।
कष्ट दूर उनका करूँ, तत्क्षण हाथों-हाथ।।२।।
वात्सल्य के अंग को, पूजूँ मन वच काय।
सम्यग्दर्शन दृढ़ करूँ, जो है शिवसुखदाय।।३।।
साधर्मी असहायजन, पर हो दृढ़ वात्सल्य।
निज प्रभावना हेतु प्रभु, नाश करूँ सब शल्य।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य वात्सल्यांग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य वात्सल्यांग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य वात्सल्यांग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

जल ज्ञानगगन से लाऊँ चंद्रिका ज्ञान की पाऊँ।
जन्मादिक रोग मिटाऊँ आस्रव सम्पूर्ण भगाऊँ।।
अपने स्वभाव के प्रति मैं वात्सल्य भाव उर लाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चंदन लाऊँ निज अनहद वाद्य बजाऊँ।
संसारतापज्वर क्षयहित संवर को हृदय लगाऊँ।।
जिनधर्म प्रभाव हेतु मैं वात्सल्यभाव उर लाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पाण्डुक वन अक्षत लाऊँ अक्षयपद निज प्रगटाऊँ।
भवसागर पार हेतु मैं निर्जराभावना भाऊँ।।
निजधर्म आयतन के हित वात्सल्यभाव उर लाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दनवन कुसुम सुप्रासुक प्रभु के चरणाग्र चढ़ाऊँ।
चिर कामरोग विनशाकर निष्काम स्वपद प्रगटाऊँ।।
साधर्मी वात्सल्य से मैं ओतप्रोत हो जाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सौमनस स्वरस चरु लाऊँ चिर क्षुधारोग विनशाऊँ।
अनुभवरस पीता जाऊँ ज्ञायक के गीत सुनाऊँ।।
सब जीवों के प्रति वत्सलता उर में सतत् जगाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं भद्रशालवन जाऊँ दीपक स्वज्योति प्रकटाऊँ।
मिथ्यात्वतिमिर भ्रम हरकर सम्यक्त्व ज्योति को पाऊँ।।
त्रिभुवन के जीव सुखी हों मैं यही भावना भाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

गिरि मेरुसुदर्शन जाकर निज ध्यानधूप उर लाऊँ।
कर्मों की ज्वाल बुझाऊँ चिन्मयचिन्तामणि पाऊँ।।
तुम सम पारस बन जाऊँ सबको ही स्वर्ण बनाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

गिरि विजय अचल पर जाऊँ फल परम रसमयी लाऊँ।
फल महामोक्ष प्रगटाऊँ निज मुक्तिवधू सुख पाऊँ।।
सबके ही दुख निर्वारूँ परिपूर्ण सौख्यतरू लाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मंदरगिरि विद्युन्मालीगिरि पर निज अर्घ्य बनाऊँ।
पदवी अनर्घ्य प्रगटाऊँ चैतन्यचंद्रिका पाऊँ ।।
संसार भार को क्षयकर निरूपम ध्रुव सौख्य सजाऊँ।
वात्सल्य अंग के बल से जय अवात्सल्य पर पाऊँ ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(मानव)

शिवसुख कारण स्वधर्म में वात्सल्यभाव हो निरुपम।
साधर्मी तथा अहिंसा में परमप्रीति हो अनुपम ।।१।।
धर्मात्मा जन के प्रति मैं वात्सल्य अटूट जगाऊँ।
जिनधर्म प्रभाव हेतु मैं हर्षित हो ज्ञान बढ़ाऊँ ।।२।।
सच्ची प्रभावना के हित तन मन धन कर न्यौछावर।
अपने स्वरूप के प्रति मैं वात्सल्यभाव उर लाऊँ ।।३।।
श्रावक मुनिजन की सेवा कर जीवन सफल करूँगा।
अज्ञानी जन को निश्चित प्रतिबुद्ध करूँ सुख पाऊँ ।।४।।
निज अन्तरंग को निर्मल कर उर वत्सलता लाऊँ।
सारे प्राणी सुख पाएँ यह नित्य भावना भाऊँ ।।५।।
निश्चय वात्सल्य सुमुनि के चरणों में वन्दन करके।
वात्सल्यशक्ति से हे प्रभु जय अवात्सल्य पर पाऊँ ।।६।।
श्रावक श्राविका आर्यिका मुनियों के प्रति हो आदर।
सत्यार्थ भाव से सबकी सेवा करके हर्षाऊँ ।।७।।
रागादि बहिर्भावों से मैं प्रीत सदा को तोडूँ।
शुद्धात्म शुद्धभावों से दृढ़ प्रीत करूँ सुख पाऊँ ।।८।।
ऋषि मुनि गणधर गाते हैं वात्सल्य अंग की महिमा।
मैं भी प्रभु पूर्ण पालकर समकित की गरिमा पाऊँ ।।९।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, पाऊँ ज्ञान उमंग।
सुदृढ़ करूँ उर मध्य मैं, वात्सल्य का अंग ।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

समकित की हरियाली जब निज अंतर में लहराती है।
शुष्क हृदय में परम ज्ञान की निर्मल ऊर्जा आती है ।।१।।

हृदय प्रफुल्लित हो जाता है जिन ध्वनि मेंहदी रचती है।
स्वभाव परिणति हर्षित होती प्रतिक्षण छमछम नचती है ।।२।।

जप तप संयम बीन बजाते शुक्लध्यान गाता है गीत।
यथाख्यात निज रस बरसाता त्वरित मोह लेता है जीत ।।३।।

जब उठती है पूर्ण अनंत चतुष्टय की महिमामय प्रीत।
मुक्तिप्रिया भी पा लेती है अद्‌भुत ध्रुव निज चेतन मीत ।।४।।

कोटि-कोटि सुर दुन्दुभियाँ बजतीं मृदुस्वर में भाव विभोर।
परिणय करके जाता चेतन त्रिलोकण सिंहासन ओर ।।५।।

स्वागत करते सभी सिद्ध चिर परिचित निर्मल चेतन का।
जय जय घोष गूँजता नभ में त्रिभुवन पति आनंदघन का ।।६।।

वात्सल्य की पावन महिमा मंगलमय हितकारी है।
सादि अनंतानंत काल तक भविजन को सुखकारी है ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री वात्सल्यांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

उत्तम अंग वात्सल्य की पूजन कर जागा उत्साह।
आत्मा के प्रति वात्सल्य का भाव हृदय में जगा अथाह ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश ।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

८. श्री प्रभावना अंग पूजन

(दोहा)

धारूँ अंग प्रभावना, परमोत्तम सुखकार।
धर्मप्रभाव महान कर, पाऊँ सौख्य अपार।।१।।
जिनपूजन रथयात्रा, जिनमंदिर निर्वाण।
स्वाध्याय के हेतु मैं, दूँ शास्त्रों का दान।।२।।
बिम्ब प्रतिष्ठा आदि से, करूँ स्वपर कल्याण।
विद्यालय निर्मित करूँ, औषधि करूँ प्रदान।।३।।
धर्मायतनविवेक से, निर्मित करूँ प्रधान।
मैं प्रभावना अंग की, पूजन करूँ महान।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य प्रभावनाअंग अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य प्रभावनाअंग अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शनस्य प्रभावनाअंग अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपाई)

धर्म प्रभाव नीर के ज्ञानी। वे ही हैं सच्चे श्रद्धानी।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।१।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी चंदन लाऊँ। शाश्वत शीतलता उर लाऊँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।२।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी अक्षत अनुपम। अक्षयपद देते हैं बिन श्रम।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।३।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी पुष्प सजाऊँ। कामबाण पीड़ा विनशाऊँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।४।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी सुचरु चढ़ाऊँ। क्षुधारोग हर शिवसुख पाऊँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।५।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी दीप उजारूँ। मिथ्या तिमिर सर्व निरवारूँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।६।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मप्रभावी धूप ध्यानमय। अष्टकर्म तत्काल करूँ क्षय।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।७।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी स्वफल चढ़ाऊँ। महामोक्षफल हे प्रभु पाऊँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।८।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म प्रभावी अर्घ्य बनाऊँ। पद अनर्घ्य अविनश्वर पाऊँ।
हो प्रभावना अंग मनोहर। उत्तम सुखदाता है सुन्दर।।९।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनाअंगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(ताटंक)

धर्ममार्ग की कर प्रभावना सम्यग्दर्शन ग्रहण करूँ।
शुद्ध आचरण के द्वारा प्रभु अप्रभावना सर्व हरूँ।।१।।
जिनदर्शन पूजन के हित जिनमंदिर निर्माण करूँ।
श्री जिनरथयात्रा आदिक के कार्य सदैव महान करूँ।।२।।
धर्म प्रभाव हेतु शास्त्रों का प्रभु मैं सदा प्रचार करूँ।
जो भूले हैं धर्म उन्हें मैं जागृत करूँ अज्ञान हरूँ।।३।।
दुखीजनों को चार दान दे मैं उनका कल्याण करूँ।
विद्यालय औषधालय तथा अनाथालय निर्माण करूँ।।४।।
श्राविकाश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम आदिक करके निर्माण।
बहु प्रकार का पात्रदान दूँ करूँ स्वयं का ही कल्याण।।५।।

गीत नृत्य वादित्र आदि से धर्म प्रभाव करूँ स्वामी।
आत्मधर्म की प्रभावना ही परमोत्तम त्रिभुवन नामी।।६।।
जिनबिम्बों की करूँ प्रतिष्ठा सम्यक्‌विधि से अभिरामी।
जीर्णोद्धार तीर्थों का कर हर्षित होऊँ अन्तर्यामी।।७।।
तन मन धन से प्राणिमात्र की सेवा करके हर्षाऊँ।
धर्म प्रभाव करूँ मैं विस्तृत परम सौख्यतरु उपजाऊँ।।८।।
जिनशासन की प्रभावना में वृद्धि करूँ निज बल से नाथ।
रत्नत्रय का तेज प्रकट कर जुड़ूँ धर्म उज्ज्वल से नाथ।।९।।
संसारी जीवों के उर में जो अज्ञान अँधेरा है।
हे प्रभु उसको दूर करूँ मैं जागे सहज उजेरा है।।१०।।
करके ऐसी प्रभावना निज जीवन सफल करूँ भगवन।
संयमफल पाकर सिद्धों में वास करूँ हो आनंदघन।।११।।
रत्नत्रय का तेज प्रकटाकर यह संसारत्रास हर लूँ।
ध्रुव परमात्म परमपद पाकर शाश्वत निज प्रकाश वर लूँ।।१२।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, जय प्रभावना अंग।
सुदृढ़ करूँ उर मध्य मैं, वात्सल्य का अंग।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

अपने स्वरूप की पावन अनुपम प्रभावना कर लूँ।
जिनधर्म प्रभाव हृदय धर सारे भवसंकट हर लूँ।।१।।
महिमा जिनधर्म प्रकाशूँ निज निजानंद रस पाऊँ।
ध्वज अनेकान्त सर्वोत्तम जगती में प्रभु फहराऊँ।।२।।
तन धन यौवन परिजन सब दो दिन के साथी नश्वर।
दर्शन ज्ञान स्वरूपी चेतन सदा रहता अनश्वर।।३।।
तन राज्य भवन भू आदि कोई न साथ जाते हैं।
केवल ये कर्मबंध ही सुख दुःखमय संग जाते हैं।।४।।
जो जैसे कृत करता है वह वैसा ही फल पाता।
शुद्धभाव होता जब उर में तब सुख अविनश्वर आता।।५।।

कर्मों का जाल न बुनकर चेतन बन जा समभावी।
निज साम्यभाव रस पीकर हर ले भवभाव विभावी।।६।।
जो शुद्धभाव उर धरते कल्याण स्वयं का करते।
हो मोह क्षोभ से विरहित उर में अनंत सुख भरते।।७।।

ॐ ह्रीं श्री प्रभावनांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

प्रभु प्रभावना अंग पूजकर मेरा पवित्र हुआ।
अंतरंग में जिनशासन का पूर्ण प्रभाव विचित्र हुआ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

नाचा मेरा मन देखो नाचा मेरा मन।
जिन दर्शन कर मैं तो हुआ धन।।१।।

जिनवर का रूप देख मुग्ध हो गया।
अपना स्वरूप देख बुद्ध हो गया।।२।।

नहीं कुछ भेद पाया दोनों ही चेतन।
नाचा मेरा मन देखो नाचा मेरा मन।।३।।

जितने गुणों के धारी श्री जिनदेव।
उतने गुणों का धारी मैं भी स्वयमेव।।४।।

मैं भी अरहंत सम आनंदघन।
नाचा मेरा मन देखो नाचा मेरा मन।।५।।

निज परिणति नाची मेरी छम छम।
समकित धारा मैंने लिया संयम।।६।।

भाव मोक्ष पाया मैंने अभी इसी क्षण।
नाचा मेरा मन देखो नाचा मेरा मन।।७।।

१३. श्री सम्यग्ज्ञान पूजन

(गीतिका)

प्रभो सम्यग्ज्ञान की पूजन करूँ शुभभाव से।
त्वरित ही अज्ञान नाशूँ जुडूँ आत्मस्वभाव से।।
मोहजन्य कुबुद्धि क्षय कर दूँ प्रभो निज ज्ञान से।
पूर्ण केवलज्ञान पाऊँ आत्मा के ध्यान से।।
ज्ञान का आवरण नाशूँ दर्शनावरणी हरूँ।
मोह क्षयकर अन्तराय विनाश स्वचतुष्टय वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अष्टविधसम्यग्ज्ञान अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(जोगीरासा)

तत्त्वज्ञान सागर जल लाऊँ त्रिविध रोग विनशाऊँ।
निज अभ्यंतर निर्मल करके शाश्वत निज निधि पाऊँ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान सागर तट जाकर शीतल चंदन लाऊँ।
भवज्वरमय संसारताप हर शीतलता उर पाऊँ ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान भू अक्षत लाऊँ अक्षयपद प्रगटाऊँ।
भव समुद्र तर शिव तट पाऊँ परमसौख्य उर लाऊँ ।।

सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान के पुष्प सजोऊँ कामबाण विनशाऊँ।
महाशील गुणलाख चौरासी निज अंतर में लाऊँ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटाकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान अनुभवरस निर्मित सुचरु चढ़ाऊँ स्वामी।
क्षुधारोग हर निराहार पद पाऊँ अन्तर्यामी।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान की दीप ज्योति ला निज अंतर उजियाऊँ।
मोह दुष्ट मिथ्यात्व नष्टकर केवलज्ञान उपाऊँ ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञानयुत शुक्लध्यान की धूप ध्यानमय लाऊँ।
भव समुद्र तर शिव तट पाऊँ परमसौख्य उर लाऊँ ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञानतरू के फल लाऊँ शुद्ध मोक्षफल पाऊँ।
अजर अमर अविनाशी पद पा ध्रुवधामी हो जाऊँ ।।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

तत्त्वज्ञान के अर्घ्य संजोऊँ पद अनर्घ्य प्रगटाऊँ ।
यह संसारभ्रमण विनशाऊँ कर्मबंध विघटाऊँ ।।

सम्यग्ज्ञान स्वरूप प्रकटकर आत्मज्ञ हो जाऊँ।
केवलज्ञान महान प्राप्तकर भवसागर तर जाऊँ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

卐 श्री सम्यग्ज्ञान अर्घ्यावलि 卐

(जोगीरासा)

मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय अरु केवलज्ञान दशाएँ।
मात्र ज्ञानगुण की होती हैं ये पाँचों पर्यायें।।
इनमें केवलज्ञान प्रकट करने का उद्यम करिए।
चार कषायें चार घातिया पुण्य-पाप सब हरिए।।
ॐ ह्रीं श्री मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. मतिज्ञान

(वीर)

इन्द्रियमन की सहायता से उत्पन्नित होता मतिज्ञान।
समकित के बिन कुमति कहाता समकित युत है सुमति सुजान।।१।।
यही अवग्रह, ईहा और अवाय, धारणा चार प्रकार।
सबका ही मैं ज्ञान करूँ प्रभु हो जाऊँ निर्मल अविकार।।२।।
मतिज्ञान के तीन शतक छत्तीस भेद लूँ पूरे जान।
केवल निज शुद्धात्मा को ही जानूँ पाऊँ सम्यग्ज्ञान।।३।।
ॐ ह्रीं श्री मतिज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. श्रुतज्ञान

मति से जानी हुई वस्तु का ज्ञान विशेष वही श्रुतज्ञान।
समकित के बिन कुश्रुत कहाता समकित युत है तो श्रुतज्ञान।।१।।
अंग बाह्य अरु अंग प्रविष्ट भेद दो धारी है श्रुतज्ञान।
इन दोनों का ज्ञान करूँ मैं संग करूँ द्रव्य श्रुतज्ञान।।२।।
प्रथम भावश्रुत ज्ञान करूँ प्राप्त करने सम्यक्श्रुतज्ञान।
बारह अंग पूर्व चौदह का ज्ञान करूँ प्रभु शुद्ध महान।।३।।
ॐ ह्रीं श्री श्रुतज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. अवधिज्ञान

क्षेत्र काल मर्यादा को जो ग्रहण करे वह अवधिज्ञान।
समकित बिना कुअवधि कहाता समकित युत सुअवधि प्रधान।।१।।
भवप्रत्यय, गुणप्रत्यय, दोनों भेद इसी के लो पहचान।
देशावधि, परमावधि, सर्वावधि तीनों लो सम्यक्ज़ान।।२।।
छह प्रकार अननुगामी, अनुगामी वर्धमान हीयमान।
तथा अवस्थित अनवस्थित छह पाऊँ स्वामी सम्यग्ज्ञान।।३।।
ॐ ह्रीं श्री अवधिज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. मनःपर्ययज्ञान

जीवों के मनगत पदार्थ जो जाने वह मनःपर्ययज्ञान।
समकित के बिना असंभव है यह रूपी का ही करता ज्ञान।।१।।
सभी गणधरों को होता है अरु उनको जो सुऋषि महान।
ऋजुमति पहिला भेद दूसरा श्रेष्ठ विपुलपति उत्तम ज्ञान।।२।।
ॐ ह्रीं श्री मनःपर्ययज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. केवलज्ञान

सकल विश्व को युगपत जाने वह होता है केवलज्ञान।
सर्व द्रव्य गुण पर्यायों को एक समय में होता जान।।१।।
लोकालोक जानने वाला यह क्षायिक ही होता ज्ञान।
इसके बिना नहीं होता है कोई प्राणी सिद्ध महान।।२।।
इसके होते ही होती है नव केवलब्धियाँ प्रधान।
पाँचों ज्ञानों में सर्वोत्तम बहुमहिमामय केवलज्ञान।।३।।
ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वादशांग

पहला आचारांग आचरण मुनियों का जिसमें वर्णन।
दूजा सूत्रकृतांग है जिसमें शुद्धज्ञान का पूर्ण कथन।।१।।
तीजा स्थानांग भूमि पर देख शोध के धरो चरण।
चौथा समवायांग क्षेत्र आदिक भावों का दिव्यकथन।।२।।
व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग पाँचवा प्रश्नोत्तर विज्ञान सघन।
षष्टम ज्ञातृधर्म कथांग सुधर्म कथाओं का वर्णन।।३।।

उपासकाध्यनांग सातवाँ श्रावक का आचरण चरण।
अन्तःकृतदशांग आठवाँ अन्तःकृतकेवली कथन।।४।।
नवमा अनुत्तरांग तीर्थ प्रति गये अनुत्तर जो मुनिवर।
दशमप्रश्न व्याकरण अंग में कथन व्याकरण प्रश्नोत्तर।।५।।
हैं विपाक सूत्रांग ग्यारहवाँ पुण्य-पाप फल का वर्णन।
दृष्टिवाद बारहवाँ मिथ्यातम नाशक सम्यग्दर्शन।।६।।
इन द्वादश अंगों के पद हैं इकशत द्वादश कोटि तथा।
लाख तिरासी सहस्र अठावन और पाँच सुन हरो व्यथा।।७।।

ॐ ह्रीं श्री द्वादशांगश्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिकर्मआदि सम्बन्धी अर्घ्य

(वीर)

दृष्टिवाद के भेद पाँच हैं पहला है परिकर्म महान।
दूजा सूत्र तृतीय अनुयोग चतुर्थम भेद पूर्वगत जान।।१।।
पंचम भेद चूलिका जानो धन्य-धन्य श्रुत-ज्ञान प्रधान।
चौदह भेद पूर्वगत के हैं और भेद भी अन्य महान।।२।।
दृष्टिवाद के पाँचों भेदों की संख्या भी लो सब जान।
एक अरब वसुकोटि साठ हैं लाख सहस्र सु बीस प्रमाण।।३।।
जिन आगम का स्वाध्याय कर भेदज्ञान प्रकटाऊँगा।
शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द रस पी, मिथ्या तिमिर नशाऊँगा।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परिकर्मादिपंचभेदगर्भितश्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चार अनुयोग

(मत्तसवैया)

प्रथमानुयोग का ज्ञान करूँ शुभ-अशुभभाव फल को जानूँ।
करणानुयोग का ज्ञान करूँ दुखदायी कर्मप्रकृति मानूँ।।१।।
चरणानुयोग से सदाचार सीखूँ चारित्र शक्ति पाऊँ।
द्रव्यानुयोग से स्वपर ज्ञान पाऊँ शुद्धात्मा निज ध्याऊँ।।२।।
चारों ही अनुयोग पढ़ूँ इनकी कथनी सम्यक् मानूँ।
सर्वोत्तम जिनधर्म योग पा निज आत्मा को पहिचानूँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट अंग अर्घ्यावलि

(वीर)

व्यंजन[१], अर्थ[२] उभय[३], अरु काल[४] उपधानाचार[५] अरु विनयाचार[६]।
तथा अनिन्हव[७] सप्तम जानो अष्टम[८] है बहुमानाचार।।१।।
पहला व्यंजन द्वितीय अर्थ है तृतीय उभय और चौथा है काल।
है उपधान पाँचवाँ, षष्टम विनय, सातवाँ, अनिन्हव पाल।।२।।
है अष्टम बहुमान यही है अंग ज्ञान के श्रेष्ठ महान।
आत्मतत्त्व की दृढ़ प्रतीति पूर्वक होता है सम्यग्ज्ञान।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टांगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. व्यंजनाचार

मात्र शब्द का पाठ जानना प्रथम अंग व्यंजन आचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों को अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री व्यंजनाचार अंगयुतसमयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. अर्थाचार

अर्थ मात्र संपूर्ण जानना द्वितीय अंग है अर्थाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री अर्थाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. उभयाचार

शब्द अर्थ दोनों का सच्चा ज्ञान तीसरा उभयाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री उभयाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. कालाचार

योग्य काल में शास्त्र पठन पाठन है चौथा कालाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री कालाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. उपधानाचार

प्राप्त ज्ञान को नहीं भूलना यह पंचम उपधानाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री उपधानाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

६. विनयाचार

विनयपूर्वक ज्ञानाराधन करना षष्टम विनयाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री विनयाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

७. अनिन्हवाचार

गुरु का नाम न कभी छिपाना यह सप्तम अनिन्ह्वावाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री अर्थाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८. बहुमानाचार

बहु आदर से जिनश्रुत पढ़ना यह अष्टम बहुमानाचार।
अष्ट अंगयुत सम्यग्ज्ञान बनाता जीवों का अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री बहुमानाचारअंगयुतसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

जीवादिक तत्त्वों का ज्ञान यथार्थ प्रयोजनभूत प्रधान।
संशय विभ्रम विमोह विरहित स्वपर ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान।।१।।
मतिश्रुत ज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं होते कभी नहीं प्रत्यक्ष।
अवधि मनःपर्यय अरु केवलज्ञान सदा ही हैं प्रत्यक्ष।।२।।
नय प्रमाण निक्षेप आदि का ज्ञान शुद्ध आवश्यक है।
स्याद्वादयुत अनेकान्त का ज्ञान परम आवश्यक है।।३।।
मैं भी प्रभु स्वज्ञान के बल से प्रगटाऊँगा केवलज्ञान।
केवलज्ञान प्रकट कर हे प्रभु पाऊँगा निज पद निर्वाण।।४।।
निश्चय से तो शुद्ध आत्मा का ही ज्ञान परम बलवान।
सारभूत कैवल्यज्ञान का स्रोत यही है महिमावान।।५।।
पाँचों ज्ञानों में सर्वोत्तम बहुमहिमामय केवलज्ञान।
एक समय में युगपत लोकालोक जानता है यह ज्ञान।।६।।

ॐ ह्रीं श्री मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानसमन्वितसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

आगम से ज्ञान प्राप्तकर जो ज्ञानशील होते हैं।
वे धैर्यपूर्वक शिवतरु के शुद्ध बीज बोते हैं।।१।।
वे पहले भूमि शुद्धि हित मिथ्यात्व नष्ट करते हैं।
रागादि मोहभाव को तज द्रव्यदृष्टि करते हैं।।२।।
फिर भेद-ज्ञान के बल से बनते हैं स्वपर विवेकी।
सम्यग्दर्शन पाने पर होते न कभी अविवेकी।।३।।
उर सम्यग्ज्ञान प्राप्तकर चारित्र शुद्ध पाते हैं।
संयम के पावन रथ को दृढ़तापूर्वक लाते हैं।।४।।
आरूढ़ उसी पर होते ही शिवपथ पर चलते हैं।
मुनि अप्रमत्त बनते ही फल यथाख्यात फलते हैं।।५।।
करते हैं मोह क्षीण वे घातिया चार हर लेते।
सर्वज्ञ स्वपद प्रकटाकर अरहंत दशा वर लेते।।६।।
फिर योगों को भी तजते क्षयकर अघातिया तत्क्षण।
ध्रुव सिद्धस्वपद पाते निज हरते कर्मों के बंधन।।७।।
फिर सादि अनंत कालों तक वे निजानंदरस पीते।
जीवत्वशक्ति के बल से तो वे सदैव ही जीते।।८।।
अक्षय अनंत शिवसुख के वे ही स्वामी होते हैं।
पाँचों प्रत्यय सब क्षयकर अन्तर्यामी होते हैं।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तयेजयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

सम्यग्ज्ञानरत्न की पूजा करके पाऊँ सम्यग्ज्ञान।
केवलज्ञानसूर्य पाऊँगा पाऊँगा निज पद निर्वाण।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

१४. श्री सम्यक्चारित्र पूजन

स्थापना

(वीर)

पंचमहाव्रत, पंचसमिति, त्रयगुप्ति, सहित सम्यक्चारित्र।
इसके पालन करने वाले हो जाते हैं परम पवित्र।।
पूर्ण देशसंयम धारण का फल पाऊँ मैं श्री जिनेश।
इसीलिए पूजन करता हूँ मैं भी हो जाऊँ परमेश।।

ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

सम्यक्चारित्र स्वबल से जन्मादिकरोग नशाऊँ।
महिमामय संयमधारी हे प्रभु मैं भी हो जाऊँ।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र स्वचंदन निज को शीतल करता है।
संसारतापज्वर हरकर आनंद स्वघट भरता है।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र स्वअक्षत अक्षयपद का दाता हैं।
अनुपम अनंत गुणदायक ये त्रिभुवन विख्याता है।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्रायअक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पुष्प से सुरभित पराग लाऊँगा।
चिर कामबाण पीड़ा हर गुण महाशील पाऊँगा।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र स्वरसमय अनुभवचरु ही सुखदायी।
चिर क्षुधारोग विध्वंसक निज निराहार पददायी।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र दीप की दिव्याभा उर में छायी।
मिथ्यात्वतिमिर को क्षयकर शिवसुख की बेला आयी।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र धूप ला मैं निज का ध्यान लगाऊँ।
वसुकर्म नष्ट करके प्रभु आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र स्वफल ही है महामोक्षफल दाता।
जो भी ये पा लेता है परमात्म परमपद पाता।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय महामोक्षफलप्राप्तये निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र अर्घ्य ही है पद अनर्घ्य का दाता।
जो भी संचित करता है ध्रुव सिद्ध स्वपद है पाता।।
सम्यक्चारित्र त्रयोदशविध अंतरंग में लाऊँ।
निश्चयपूर्वक विकसितकर प्रभु मुक्तिसौख्य मैं पाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सम्यक्चारित्र अर्घ्यावलि

पंचप्रकारचारित्र

(चौपई)

पंचप्रकार शुद्धचारित्र। धारण करते सुमुनि पवित्र।
बिन चारित्र असंभव मुक्ति। मुक्तिप्राप्ति की ये ही युक्ति।।
तजूँ असंयम हे भगवान। बनूँ संयमासंयमवान।
निज संयम धारूँ फिर देव। पाँचों संयम धरूँ स्वयमेव।।

ॐ ह्रीं श्री पंचप्रकारचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. सामायिक चारित्र

(वीर)

सब सावद्ययोग तज दूँ मैं भाव शुभाशुभ का कर दूँ त्याग।
सामायिकचारित्र धार लूँ निज स्वरूप से कर अनुराग।।१।।
सर्वजीव हैं केवलज्ञानमयी भावना यही भाऊँ।
समतारूपी परिणामों में रहूँ आत्मा ही ध्याऊँ।।२।।
निर्विकार स्वसंवेदन बल से राग-द्वेष करके परिहार।
छठवें से नवमें तक होता निश्चयसामायिक अविकार।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सामायिकचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२. छेदोपस्थापना चारित्र

सामायिक से हटकर यदि सावद्यरूप हो कुछ व्यापार।
प्रायश्चित्त करके उत्पन्नित दोष सभी कर दूँ परिहार।।१।।
छठवें से नवमें तक होता छेदोपस्थापना चारित्र।
आत्मधर्म में सुस्थापित हो जाऊँ मैं भी पवित्र।।२।।

ॐ ह्रीं श्री छेदोपस्थापनाचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

३. परिहारविशुद्धि चारित्र

जन्म समय से तीस वर्ष रह फिर जिनदीक्षा ग्रहण करें।
तीर्थंकर के पादमूल में आठ वर्ष अध्ययन करें।।१।।
नववाँ प्रत्याख्यानपूर्व पढ़ने पर हो परिहारविशुद्धि।
महावीर्यपति प्रमादविरहित सहित निर्जरा पाता शुद्धि।।२।।

कठिन आचरण करने वाले मुनियों को यह होता है।
नहीं विराधना जीवों की हो ऐसा संयम होता है।।३।।
तीर्थंकर को यहाँ प्रकट होता है यह चारित्र।
अति कम अवधिज्ञान के धारी जनम सबसे महापवित्र।।४।।
छठे गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान तक होता है।
सब जीवों की रक्षा होती यह तो निज में होता है।।५।।

ॐ ह्रीं श्री परिहारविशुद्धिचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

४. सूक्ष्म सांपरायिक चारित्र

जब यह सूक्ष्मलोभ उदय हो तब यह संभव होता है।
सूक्ष्मसांपराय चारित्र जु दसवें तक ही होता है।।
जब कषाय का पूरा उपशम या क्षय हो तब होता है।
यह चारित्र शुद्ध संयमीमुनियों को ही होता है।।

ॐ ह्रीं श्री सूक्ष्मसांपरायिकचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

५. यथाख्यात चारित्र

मोहनीय के क्षय या उपशम से हो यथाख्यातचारित्र।
शुद्धआत्मा के भीतर ही थिर होना है यह चारित्र।।
गुणस्थान ग्यारहवें से यह चौदहवें तक होता है।
यह उपशान्तकषाय गुणस्थानी जीवों को होता है।।
क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती को निर्मल होता है।
यह संयोगकेवली अयोगकेवली जिन को होता है।।
भरतक्षेत्र काल पंचम में केवल प्रथम दो ही चारित्र।
यथाख्यातचारित्र प्राप्तकर हो जाऊँ मैं पूर्ण पवित्र।।

ॐ ह्रीं श्री यथाख्यातचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एक सौ पच्चीस भावनाएँ

(ताटंक)

अहिंसादि पाँचोंव्रत की पच्चीसभावनाएँ भाऊँ।
पंचपाप के पूर्ण त्याग की पाँचभावना उर लाऊँ।।१।।
मैत्री आदिक चारभावना अरु प्रशमादि भावना चार।
शल्यत्याग की तीन देह भवभोगत्याग की तीन विचार।।२।।

दर्शविशुद्धि आदि भावना सोलह भाऊँ भलीप्रकार।
दशलक्षण की भव्यभावना दस भाऊँ होऊँ अविकार।।३।।
अनशनादि तप की द्वादशभावना हृदय में प्रभु लाऊँ।
अनित्यादि की प्रभु द्वादश वैराग्यभावनाएँ भाऊँ।।४।।
ध्यानभावना सोलह भाऊँ तत्त्वभावना भाऊँ सात।
रत्नत्रय की तीनभावना दर्शनज्ञानचरित्र सुख्यात।।५।।
अनेकान्त की एकभावना श्रुतभावना एक विख्यात।
इक शुद्धात्मभावना भाऊँ इक निर्ग्रंथभावना ख्यात।।६।।
द्रव्यभावना एक विविध विधि भाऊँ त्यागूँ भवभ्रम नेष्ठ।
ये ही एकशतकपच्चीस भावनाएँ भाऊँ नित श्रेष्ठ।।७।।
इसप्रकार निर्मल होकर प्रभु निज अनुभव रसपान करूँ।
रत्नत्रय की परमभक्ति पा शाश्वतपद निर्वाण वरूँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री एकशतकपच्चीसभावनासहितसम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीरछंद)

तेरहविध चारित्र धार मुनि मन में लाते रंच न खेद।
अंतरंगतप छहप्रकार का तथा बाह्यतप के छह भेद।।१।।
प्रायश्चित्त विनय वैय्यावृत स्वाध्याय व्युत्सर्ग स्वध्यान।
छहप्रकार का अंतरंगतप धारण करते साधु महान।।२।।
अनशन अवमौदर्य तथा व्रत परिसंख्यान तथा रसत्याग।
कायक्लेश अरुविविक्तशय्यासन ये बाह्य सुतप अनुराग।।३।।
इनको पालन करने वाले महासंयमी हैं मुनिराज।
अट्ठाईस मूलगुणधारी मुनि बनते निजहित के काज।।४।।
ग्यारहअंग पूर्व चौदह के पाठी उपाध्याय मुनि ईश।
अट्ठाईस मूलगुण शोभित उपाध्याय के गुण पच्चीस।।५।।
जिनआगम का पठन कराते हैं संघस्थ सुमुनियों को।
आगम का रहस्य बतलाते सहजभाव से गुणियों को।।६।।
अट्ठाईस मूलगुण शोभित आचार्यों के गुण छत्तीस।
साधुसंग के संचालक हैं सर्वसाधुओं के हैं ईश।।७।।

द्वादशतप दशधर्म तथा षट्आवश्यकयुत पंचाचार।
तीनगुप्तियुत करुणाधारी देते हैं दीक्षा अनगार।।८।।
छयालीस गुणधारी अरहन्तों को सब वन्दन करते।
अष्टगुणों के स्वामी सिद्धों का नित अभिनन्दन करते।।९।।
दोषअठारह रहित केवली को करते हैं नित्य प्रणाम।
शुद्ध आत्मा ध्याते ध्याते पा लेते हैं निज ध्रुवधाम।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, पाऊँ पद निर्वाण।
पा सम्यक्चारित्र उर, होऊँ महान।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीर)

पहला आर्त्तध्यान है दूजा रौद्रध्यान है भवदुःखकार।
तीजा धर्मध्यान अरु चौथा शुक्लध्यान शिवसुखदातार।।१।।
इनके चार-चार भेद हैं सब मिल सोलह जानो आप।
इनको जाने बिना न होता निर्मल आत्मतत्त्व का जाप।।२।।
आर्त्तध्यान है चार भाँति का इष्टवियोग अनिष्टसंयोग।
तीजा पीड़ाचिन्तन जाने चौथा है निदान दुखरोग।।३।।
यह प्रशस्त भी होता है अरु अप्रशस्त भी होता है।
यही अन्ततोगत्वा पूरा भवदुःखदायी होता है।।४।।
रौद्रध्यान भी चार भाँति है जो है घोर महादुःख कंद।
हिंसानंदी मृषानंदि अरु चौर्यानंद परिग्रहानंद।।५।।
चारों घोरनरक दुःखदाता इन्हें न आने दो तुम पास।
रौद्रध्यान से बचो सदा ही जिन आगम का कर अभ्यास।।६।।
धर्मध्यान के चार भेद हैं स्वर्गादिक साता दाता।
सम्यग्दर्शन पाए बिन यह ध्यान नहीं उर में आता।।७।।
आज्ञाविचय अपायविचय विपाकविचय संस्थानविचय।
चौथे से पंचम षष्टम सप्तम तक होता है निर्भय।।८।।

शुक्लध्यान के चार भेद हैं उपशम क्षायिकश्रेणी युक्त।
शुक्लध्यान बिन कोई प्राणी कभी नहीं होता है मुक्त।।९।।
पहला पृथक्त्ववितर्क दूजा एकत्ववितर्क विचार।
तीजा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती व्युपरतक्रियानिवृत्ति चार।।१०।।
अष्टमगुणस्थान से होता पहला शुक्लध्यान प्रारंभ।
उपशम ग्यारहवें तक जाता आगे जाता क्षायिक रम्य।।११।।
क्षायिकचारित्र होने पर ही होता पूर्ण मोक्षसुख प्राप्त।
सादिअनंतानंत काल तक निजानंद रस होता व्याप्त।।१२।।

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

प्रभु सम्यक्चारित्र सुपूजन करके उर में हर्ष हुआ।
संयम के प्रति जगी रुचि उर इतना तो उत्कर्ष हुआ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

भजन

जिनवर की बात तू आगम से सुन।
फिर धुन अपनी ध्रुवधाम धुन।।१।।
तुझमें अनंत गुण हैं ही विद्यमान।
अवगुण छोड़ तू उनको ही गुन।।जिनवर .....।।२।।
भवमार्ग तो हैं देख बहुत अनेक।
तू तो मुक्तिमार्ग रत्नत्रय चुन।।जिनवर ......।।३।।
कर्मों के सारे जाल अभी तोड़ दे।
सिद्धपद के पट दिन-रात बुन।।जिनवर।।४।।
शाश्वत पाएगा अनंत सौख्य तू।
तब ही सुनेगा शिवपुर रुनझुन।।जिनवर।।५।।

ॐ

१५. श्री पंचमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन

(चौपई वीर)

पंचमहाव्रत की पूजनकर पंचमहाव्रत धारूँ देव।
हिंसा झूठ कुशील परिग्रह चोरी पाप तजूँ स्वयमेव।।
धर्म अहिंसा सत्य अचौर्य अरु ब्रह्मचर्य अपरिग्रह धार।
ये ही पाँचों पूर्ण महाव्रत ले जाते भवसागर पार।।
पाँचों पापों से निवृत्ति ही व्रत कहलाता है उत्तम।
एकदेशअणुव्रत संयम अरु सर्वदेश है सर्वोत्तम।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपई वीर)

जल एकत्वभाव उर लाय। जन्म-जरा-मृत्यु रोग नशाय।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।
पंचमहाव्रत भवदु:खहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो।।१।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

साम्यभाव चंदन उर लाय। भवज्वर पीड़ा त्वरित नशाय।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम शगुरु हो।।
पंचमहाव्रत भवदु:खहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो।।२।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

समभावी अक्षत गुण रूप। पाऊँ अक्षयपद चिद्रूप।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।

पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।३ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

समभावी ध्रुवपुष्प महान। कामभाव करते अवसान।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।४ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभवरस निर्मित चरु श्रेष्ठ। हरते क्षुधामयी दुःख नेष्ठ।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।५ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञानदीप उर लाय। मोहतिमिर मिथ्यात्व नशाय।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।६ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्लध्यानमय धूप महान। करती अष्टकर्म अवसान।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।७ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

यथाख्यात तरुवर फल श्रेष्ठ। पूर्ण मोक्षफलदाता ज्येष्ठ।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।८ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

घाति-अघाति विनाशक अर्घ्य। तत्क्षण देते स्वपद अनर्घ्य।
परमगुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।

पंचमहाव्रत भवदुःखहार। शिवसुखदाता अपरम्पार।
महासुख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।९ ।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(विजात)

विभावभावों से बच के रहना यही डुबाते हैं आत्मा को।
विकार सारे हैं मूल दुःख के सदा भ्रमाते निजात्मा को।।१।।
जी ऊब जाता है पाप से तो ये जीव पुण्यों के भाव करता।
स्वयं को विस्मृत सदा ही करता न मोह-मिथ्यात्व शल्य हरता।।२।।
सातों रंगों में उत्तम ज्यों श्वेतरंग अतिउज्ज्वल।
त्यों सप्ततत्त्व में उज्ज्वल शुद्धात्मतत्त्व है निर्मल।।३।।
यह रंग अरूपी अनुपम ज्ञायकस्वभाव का पावन।
जो मोक्षस्वरूप त्रिकाली ध्रुवधामी है मनभावन।।४।।
जो इसे निरखता रुचि से अमरत्व अमित पाता है।
जो इसे परखता शिवमय सिद्धत्व वही लाता है।।५।।
यह निज अनुभव से मिलता निरपेक्ष पूर्ण असहायी।
यह सादि अनंतानंतों कालों तक ध्रुवरस पायी।।६।।
इसको जो वंदन करता वह त्रिभुवनपति बन जाता।
इन्द्रादिक सुरनर मुनियों का नमस्कार नित पाता।।७।।
ज्ञायकस्वभाव जब जगता मिथ्यात्व मोह भगता है।
रागादिभाव भी इसको फिर कभी नहीं ठगता है।।८।।
आनन्दामृत की धारा बहती इसके अंतर में।
यह निजानंद रसलीनी आनंदित स्वभ्यंतर में।।९।।
यह ज्ञायक मैं ही तो हूँ टंकोत्कीर्ण ध्रुवचिन्मय।
सौभाग्य जगा है मेरा पाया है इसका परिचय।।१०।।
अब द्वैत नहीं है कोई अद्वैत हो गया हूँ मैं।
तज अप्रतिबुद्धदशा को प्रतिबुद्ध हो गया हूँ मैं।।११।।
अब त्रिलोकाग्र के ऊपर निश्चित निवास मेरा है।
संयमरथ पर आरूढ़ित दशदिशि प्रकाश मेरा है।।१२।।

अब क्या लेना-देना है सिद्धों से यह बात बताओ।
मैं स्वयं सिद्ध हूँ शाश्वत त्रैकालिक ध्रुवगुण गाओ।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री पंचमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

पंचमहाव्रत की पूजनकर व्रतधारण का जागा भाव।
आप कृपा से नाश करूँ मैं पाँचों प्रत्यय के परभाव।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

गाओ रत्नत्रय के गीत। गाओ रत्नत्रय के गीत।
पाओ शुद्धातम की प्रीत। पाओ शुद्धातम की प्रीत।। गाओ...

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र हृदय में धारो आज।
भक्तिभाव से पूजन करके हर्ष मनाओ आज।।
पाओ वसु कर्मों पर जीत। गाओ...

मोह-राग-द्वेषादिक भाव का करो अभी तुम नाश।
यथाख्यातचारित्र प्राप्त कर पाओ ज्ञानप्रकाश।।
विभावी भाव जाएँगे रीत। गाओ...

रत्नत्रय है धर्म हमारा रत्नत्रय है प्राण।
रत्नत्रय ही मुक्तिमार्ग है रत्नत्रय निर्वाण।।
इसी को आज बनाओ मीत। गाओ...

ॐ

१६. श्री अहिंसाव्रतधारक पूजन

(ताटंक)

करुणामयी अहिंसाव्रत का पालन महाव्रती करते।
हिंसामय परभाव नाशते सकल कलुषता को हरते।।१।।
निश्चय पंचमहाव्रत पालूँ परम अहिंसाव्रत धारूँ।
षट्कायिक की दया पालकर सर्वपापमल निर्वारूँ।।२।।
शुद्ध अहिंसाव्रत पालनहित निजस्वभाव में रहूँ प्रभो।
रागादिक हिंसादिभाव का करूँ सर्वथा त्याग विभो।।३।।
श्रेष्ठ अहिंसाव्रत की पूजन का जागा है उर में भाव।
निरतिचारव्रत पालन करके निरखूँ अपना शुद्धस्वभाव।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

सद्धर्मतत्त्व जल पीकर तीनों भवरोग मिटाऊँ।
शुद्धात्मभाव में जीकर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व चंदन ला भवज्वाला शीघ्र बुझाऊँ।
संसारताप क्षय करके आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व धवलोज्जवल अक्षत प्रभु उर में लाऊँ।
अक्षयपद प्राप्त करूँ मैं आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व पुष्पांजलि से अपना हृदय सजाऊँ।
दुष्कामव्यथा को हरकर गुण परमशील प्रकटाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व के उत्तम अनुभव रसमय चरु लाऊँ।
चिरक्षुधारोग को हरकर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व दीपावलि ज्योतिर्मय जगमग लाऊँ।
अज्ञानतिमिरभ्रम क्षयकर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व की पावन निज ध्यानधूप उर लाऊँ।
आठों कर्मों को जयकर पद नित्य निरंजन पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व नन्दनवन जा ज्ञानवृक्ष उपजाऊँ।
ध्रुव महामोक्षफल पाकर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सद्धर्मतत्त्व अर्घ्यावलि हे स्वामी चरण चढ़ाऊँ।
पदवी अनर्घ्य निज पाकर आनंद अतीन्द्रिय पाऊँ।।
व्रत धर्म अहिंसा पालूँ प्रभु महाव्रती बन जाऊँ।
षट्कायिक रक्षा के हित प्राणीसंयम उर लाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

(मानव)

मैं परम अहिंसक होऊँ पंचमगति का सुख जोऊँ।
संकल्प-विकल्प विनाशूँ निज आत्मस्वरूप प्रकाशूँ।।

(सखी)

रागादिकभाव अभावी। बन परम अहिंसाभावी।।
संकल्पीहिंसा त्यागूँ। हिंसककृत्यों से भागूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री संकल्पीहिंसारहितअहिंसाधर्मधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हिंसा के भाव विनाशूँ। करुणा के भाव प्रकाशूँ।।
उद्योगीहिंसा दुःखमय। है कुगतिप्रदाता भवमय।।२।।

ॐ ह्रीं श्री उद्योगीहिंसारहितअहिंसाधर्मधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सब जीवों की रक्षा कर। निज परम अहिंसा उर धर।।
आरम्भीहिंसा को तज। निज धर्म अहिंसा लूँ भज।।३।।

ॐ ह्रीं श्री आरम्भीहिंसारहितअहिंसाधर्मधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादिक हिंसा त्यागूँ। अपने स्वभाव में लागूँ।।
मैं तजूँ विरोधीहिंसा। भाए निज परम अहिंसा।।४।।

ॐ ह्रीं श्री विरोधीहिंसारहितअहिंसाधर्मधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(मानव)

रागादिक का होना ही हिंसा है महान दुःखतम।
आत्मा के भीतर रहना ही धर्म अहिंसा अनुपम।।१।।

शुद्धोपयोग अतिपावन उर को पवित्र करता है।
उपयोग अशुद्ध अगर है तो उसको क्षय करता है।।२।।
मुनि परम अहिंसक होते षट्कायिक रक्षा करते।
हो अप्रमत्त निजभावों की सतत् सुरक्षा करते।।३।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, तज दूँ हिंसाभाव।
शुद्ध आत्मपुरुषार्थ से, पाऊँ आत्मस्वभाव।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसाधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

महिमामयी अहिंसा का तो पालन महाव्रती करते।
नहीं किसी का हृदय दुखाते हिंसा से सदैव डरते।।१।।
समकित की निधि को पाते ही प्रथम जान लेता चेतन।
मैं तो ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ मुझ में नहीं राग का कण।।२।।
कोई भी पर वस्तु न मेरी यह निर्मल प्रतीति होती।
उर में केवल अपने ज्ञायक से ही पूर्ण प्रीति होती।।३।।
भेद-ज्ञान का स्वामी हूँ मैं स्वपर विवेक बुद्धि सम्राट।
दर्शनज्ञानमयी चेतन हूँ गुण अनंत लख हुआ विराट।।४।।
निरुपसर्ग हूँ मैं निसंग हूँ अविकारी अविनाशी हूँ।
मैं ज्ञातृत्वशक्ति से शोभित युगपत स्वपर प्रकाशी हूँ।।५।।
सल्लेखना परम हितकारी परम अहिंसा धारूँगा।
मोह रागद्वेषादि सभी भवराग पूर्ण निरवारूँगा।।६।।
पंचमभाव आश्रय लेकर पंचाचारी होऊँगा।
पंचमगति पाऊँगा हे प्रभु अष्टकर्मरज धोऊँगा।।७।।
निर्विकल्प अनुभव के बल से ध्रुव अखंडपद पाऊँगा।
परम पारिणामिकस्वभाव से अब तो शिवपुर जाऊँगा।।८।।
ज्ञानस्वभावी ज्ञानोदधि हूँ ज्ञानशरीरी हूँ स्वामी।
परम अहिंसाधर्म स्वयं प्रगटाऊँगा अन्तर्यामी।।९।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसाधर्मधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

पंचमहाव्रत की पूजनकर व्रतधारण का जागा भाव।
आप कृपा से नाश करूँ मैं पाँचों प्रत्यय के परभाव।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

है मित्र हमारा सम्यक्चारित्र परम बलवान।
निज परिणति मेरी रानी अति सुन्दर शोभावान।।
परपरिणति कुलटादासी ने मुझे किया हैरान।
अपने स्वरूप को भूला मैं पर में आपा मान।।
उपयोग चैतन्यलक्षण चैतन्यभावमय प्राण।
माता मेरी जिनवाणी हैं पिता वीर भगवान।।
अब आज समुति की बातें सुन लिया स्वयं को जान।
तत्त्वों के सम्यक् निर्णय से हुआ भेदविज्ञान।।
मैं ज्ञाता-दृष्टा चेतन परिपूर्ण ध्रौव्य विभुवान।
स्वामी अनंतगुण का हूँ सिद्धत्व निराली शान।।
तीर्थंकर का लघुनंदन जिनवर की हूँ संतान।
माता मेरी जिनवाणी हैं पिता वीर भगवान।।
चैतन्यपुंज अविनाशी टंकोत्कीर्ण गुणवान।
मैं सिद्धपुरी का वासी त्रिभुवनपति महामहान।।
समता का सागर मेरे उर में बहता रसवान।
चैतन्यधातु से निर्मित आतम का करता ध्यान।।
पावन रत्नत्रय लेकर शिवपथ पर किया प्रयाण।
माता मेरी जिनवाणी हैं पिता वीर भगवान।।

१७. श्री सत्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन

(चौपई)

निश्चय सत्यमहाव्रत जान। सौख्यस्वरूपी सत्य महान।
परम सत्यव्रत ही शिवयान। हितमित प्रिय वच श्रेष्ठ प्रधान।।१।।
परहित गर्भित सत्यव्रती। निजहित भूषित महाव्रती।
महामौन ही सत्य महान। सभी व्रतों का श्रेष्ठ वितान।।२।।
पूजन करूँ भाव से आज। ध्रुव निजपद पाऊँ जिनराज।
महासत्य का सुन संदेश। धरूँ दिगम्बर जिनमुनिवेश।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(विजात)

सहज स्वभावी सुसत्य जल की महान महिमा हृदय को भायी।
जनम जरादिक विनाश करने की बेला अब तो सहज ही पायी।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।१।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्य चंदन हमारे उर में महक रहा है।
विनाश भवज्वर का यह समय पा हृदय हमारा चहक रहा है।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।२।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्यअक्षत अनंत गुणमय अनंत बलमय।
महान अक्षय स्वपद के दाता स्वरूप निज पा हुए हैं निर्भय।।

स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।३।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्यपुष्पों की गंध पावन सहज मिली है।
ये काम पीड़ा हुई है निर्बल स्वशील गुण छवि हृदय झिली है।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।४।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्य चरु पा हृदय हुआ है हर्षित।
क्षुधा की पीड़ा विनष्ट करके पवित्र अक्षय सुख होगा निश्चित।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी स्वज्योति निर्मित सुसत्यदीपक है आज जगमग।
जगत का भ्रमतम मिटायेंगे हम शिवम् के पथ पर बढायेंगे पग।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्य निर्मित स्वधूप पावन है शुक्लध्यानी।
ये कर्म आठों जलायेंगे हम मिलेगी सिद्धों की राजधानी।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।७।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्य तरु से ही मोक्षफल की भी प्राप्ति होगी।
शिवम् सुन्दरम् हृदय बनेगा स्वसौख्य की ही तो व्याप्ति होगी।।
स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।८।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज स्वभावी सुसत्य के ही महाव्रती बनके अर्घ्य लाएँ।
अनर्घ्य पद की महान महिमा के गीत हे प्रभु सदा ही गाएँ।।

स्वसत्य निर्णय किए बिना प्रभु कभी भी समकित न पा सकेंगे।
अगर न होगा स्वसत्यव्रत तो कभी भी शिवपुर न जा सकेंगे।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(मानव)

जीवत्वशक्ति का स्वामी क्यों करता भावमरण यह।
बंधन करता कर्मों का करता क्यों द्रव्य मरण यह।।१।।
यदि क्रूर मोह को जीते तो मिथ्यादर्शन क्षय हो।
दृढ़ भेदज्ञान करके यह समकित पाकर निर्भय हो।।२।।
अविरति को जय कर ले तो संयम का रथ भी पाए।
यदि शुक्लध्यान ध्याए तो यह यथाख्यात भी लाए।।३।।
घातिया नष्ट करने को यह मोह नाश कर देगा।
सर्वज्ञ स्वपद प्रकटाकर कैवल्यज्ञान उर लेगा।।४।।
योगों को क्षय करते ही ध्रुव सिद्ध स्वपद पाएगा।
फिर सादि अनंत काल तक परिपूर्ण सौख्य लाएगा।।५।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, सत्यधर्म को आज।
ज्ञायक सत्यस्वरूप को, सतत् झुकाऊँ माथ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(समान सवैया)

परम सत्य को धर्म न माना रहा सत्य का घातक बन मैं।
असत्य को ही अपनाया है प्रभु असत्य आराधक बन मैं।।१।।
सत्यमहाव्रत पालन करके ही शिवसुख पाता प्राणी।
त्रिलोकाग्र पर जाकर ही आनंद अतींद्रिय पाता प्राणी।।२।।
अपने भीतर दर्शनज्ञान भरा है उसे न मैंने जाना।
जो भीतर में परम सत्य है उसे न मैंने अपना माना।।३।।
इसीलिए तो भव अटवी में भटक-भटक दुःख पाए नाना।
घोरदुःखों का कारण इसको मैंने कभी नहीं पहिचाना।।४।।

स्वानुभूति का दर्शन मैंने कभी नहीं पाया हे स्वामी।
परद्रव्यों में महामूर्छित व्यथित रहा हे अन्तर्यामी।।५।।
मैं ज्ञायक हूँ मैं ज्ञायक हूँ ऐसा चिन्तन किया न प्रतिपल।
अपने निज ज्ञायक स्वभाव बिन कैसे होता उत्तम निर्मल।।६।।
पश्चात्ताप दोष का होता तो पवित्रता आ ही जाती।
अपनी निर्मल शुद्धआत्मा फिर चेतन मन को हर्षाती।।७।।
अगर राग में दुःख न लगेगा तो सुख होगा कभी नहीं विभु।
अगर ज्ञान में सुख भासित हो तो फिर होगा दुःख न कभी प्रभु।।८।।
पर में यदि निज बुद्धि रुकी है तो फिर दुःख का अंत नहीं है।
निज में यदि निज बुद्धि है तो फिर सुख का अंत नहीं है।।९।।
लौकिकभक्ति ज्ञान घातक है भव परिभ्रमण मूल दुखरूपी।
तथा अलौकिकभक्ति सदा ही शाश्वत निर्मल ध्रुव सुखरूपी।।१०।।
सर्वोत्कृष्ट सत्य रस प्रेमी शुद्धदृष्टि सम्यग्दृष्टि है।
सौम्यमूर्ति है लगनशील है जागरूक निज पर सुदृष्टि है।।११।।
दर्शन ज्ञानादिक लक्षण से सम्यग्दृष्टि सदा भूषित है।
अपलक्षण से मिथ्यादृष्टि प्राणी ही सदैव दूषित है।।१२।।
सत्यधर्म का अवलंबन ले जो भी शिवपथ पर आएगा।
महा सत्यव्रतधारी बनकर महामोक्षसुख ही पाएगा।।१३।।

ॐ ह्रीं श्री सत्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

परम सत्यव्रत की पूजन की मैंने भावपूर्वक नाथ।
सत्यमहाव्रतधारी बनकर हो जाऊँ मैं प्रभो स्वनाथ।।
रत्नत्रयमंडल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चयपूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

॥ॐ॥

१८. श्री अचौर्यमहाव्रतधारक मुनिराजपूजन

(कुण्डलिया)

व्रत अचौर्य निश्चय सहित महाव्रती के पास।
ग्रहण त्याग से रहित है निज का है विश्वास ।।१।।
निज का ले विश्वास बढ़े शिवपथ पर आगे।
सारे दोष विनाश किए तो भवदु:ख भागे।।२।।
ज्ञानभाव से भूषित हैं ये मुनिवर के व्रत।
इनने धारे हैं स्वेच्छा से पंचमहाव्रत।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सखी)

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। हैं क्रोधभाव परिहारी।।
जल लाऊँ प्रभु अविकारी। भवरोग सर्वथाहारी।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। हैं क्षमारूप भवतारी।।
शीतल चंदन गुण लाऊँ। शीतल छवि लख हर्षाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। हैं मान कषाय विदारी।।
अक्षत लाऊँ धवलोज्ज्वल। पाऊँ पद अक्षय निर्मल।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। दु:खकामबाण निर्वारी।।
ध्रुवपुष्प शीलमय लाऊँ। रागादिक दोष मिटाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। त्यागी सब मायाचारी।।
नैवेद्य स्वरसमय लाऊँ। चिर क्षुधारोग विनशाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। सर्वांश लोभ परिहारी।।
दीपक स्वज्ञान मय लाऊँ। कैवल्य चंद्रिका पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। चौकड़ी तीन निर्वारी।।
निज धर्म धूप ले पावन। हरते कर्मों के बंधन।।७।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। संसार दोष परिहारी।।
अविलम्ब ध्रौव्य धुन लाऊँ। ध्रुव महामोक्ष फल पाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिवर अचौर्यव्रतधारी। हैं लौकिक अर्घ्य निवारी।।
पदवी अनर्घ्य पाते हैं। शिवसुखतरु उपजाते हैं।।९।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(चौपाई)

ग्रहण त्याग से शून्य आत्मा। त्यागोपादान शून्य आत्मा।।
पर का ग्रहण अचौर्य विनाशक। है चोरी का भाव विघातक।।१।।
जो चोरी के कृत करते हैं। वे ही भवदधि में गिरते हैं।।
पर के भाव न छूना चेतन। भवदु:ख होगा दूना चेतन।।२।।
बिना आज्ञा कुछ मत लो तुम। मत चोरी का पाप करो तुम।।
श्रेष्ठ महाव्रत अचौर्य धारो। निज स्वरूप को शुद्ध विचारो।।३।।
पर का ग्रहण महाव्रत घातक। निज स्वभाव ही शिवसुख दायक।
शुद्ध अचौर्यमहाव्रतधारी। वे ही सच्चे भवदु:खहारी।।४।।

(सोरठा)

व्रत अचौर्य का भाव, जागे मेरे हृदय में।
हो जाऊँ निर्लोभ, संतोषामृत पानकर।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

व्रत अचौर्य उर धारकर, त्याग करूँ परद्रव्य।
आत्मद्रव्य की प्राप्ति का, है मेरा मन्तव्य।।

(ताटंक)

जो रत्नत्रय धारी होते धारण करते हैं मुनि भेष।
वे साता में राग न करते नहीं असाता में है द्वेष।।१।।
अट्ठाईस मूल गुणधारी तेरह विध चारित्र संयुक्त।
धर्मध्यान फिर शुक्लध्यान में लीन सुमुनि होते भवमुक्त।।२।।
शुक्लध्यान अविकल्पलीन मुनि को होता है कभी न बंध।
संवर पूर्वक कर्म निर्जरा कर हो जाते हैं निर्बंध।।३।।
मरघट हो या महल सभी सम इष्ट अनिष्ट न राग-द्वेष।
निज स्वरूप को ही ध्याते हैं ऐसा होता मुनि का वेश।।४।।
वन पर्वत उपवन सरिता तट तरु तल में ही करते वास।
भव्य दिगंबर नग्न स्वमुद्रा वीतरागता इनके पास।।५।।
आहारादिक समय अयाचक वृत्ति धारते हैं मुनिराज।
तन से भी निर्ममत्व होकर सिद्ध किया करते निज काज।।६।।
महाव्रती ये अचौर्यव्रत के धारी इनको सतत् प्रणाम।
इनके चरणों की रज निज मस्तक पर धारूँ आठों याम।।७।।
भावलिंग धारी मुनियों की हृदय गूँजती जय जयकार।
ऐसा ही मुनिवेष धारकर मैं भी हो जाऊँ भवपार।।८।।
मोक्षप्राप्ति के लिए तपस्या का न लोभ करते मुनिराज।
वे तो मोक्षस्वरूपी ही हैं परम अनिच्छुक हैं ऋषिराज।।९।।

ॐ ह्रीं श्री अचौर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

प्रभो अचौर्यमहाव्रत की मैंने पूजन की हर्षित हो।
मुनि बन राग-द्वेष सब नाशूँ अन्तर मन से पुलकित हो।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

ॐ

१९. श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन

(दोहा)

ब्रह्मचर्य निश्चय सहित, श्री अरहंत महान।
ब्रह्मचर्य महाव्रत, ही है श्रेष्ठ प्रधान।।१।।
आत्मब्रह्म में रमण ही, करता निज कल्याण।
महाशील गुणवान ही, पाते पद निर्वाण।।२।।
ब्रह्मचर्यव्रत श्रेष्ठ की, पूजन करूँ महान।
शील स्वभावी सूर्य पा, करूँ आत्मकल्याण।।३।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीर)

ब्रह्मचर्य जल पाकर प्राणी करता है निज पर उपकार।
जन्म जरादिक रोग नाशकर पाता सुख अमरत्व अपार।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।१।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य चंदन की महिमा से जो शोभित होता है।
कामवासना से पलभर भी कभी न दूषित होता है।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।२।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य के अक्षत तंदुल हैं अखंड गुण के भंडार।
अक्षयपद की प्राप्ति कराते देते हैं आनंद अपार।।

ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।३।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य के पुष्प शीलमय ही कंदर्प दर्प हरते।
परम शीलगुण के भंडारी ही आनंद अतुल वरते।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।४।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य के अनुभवशाली सुचरु प्राप्त जो करते हैं।
क्षुधारोग की चिर पीड़ा अन्तर्मुहूर्त में हरते हैं।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।५।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य के दीप प्रभामय अन्तर में प्रकाश करते।
केवलज्ञानलब्धि पाने को सर्व कुशील त्रास हरते।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।६।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य की धूप ध्यानमय अष्टकर्म क्षय करती है।
महाशील के लाख चुरासी उत्तर गुण उर धरती है।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।७।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य रूपी तरुवर ही महामोक्षफल का दाता।
जो पा लेता वही जीव ध्रुव सिद्ध स्वपद सादर पाता।।
ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।८।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य के अर्घ्य भावमय तुम्हें समर्पित हैं जिनदेव।
पद अनर्घ्य स्वयमेव प्राप्त होता है बिना श्रम के स्वयमेव।।

ब्रह्मचर्यव्रत का धारी ही महाव्रती मुनि होता है।
पूर्ण शीलगुण से भूषित हो महाशीलपति होता है।।९।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

शील संबंधी अष्टादशसहस्रदोष रहित

(वीर)

दोष अचेतन स्त्री के त्रय कठोर कोमल स्पर्श चित्र।
तीनकरण कृत, कारित, अनुमोदन, दो मन, वच योग सचित्र।।१।।
पाँचों इंद्रिय, भय, आहार, परिग्रह, मैथुन, संज्ञाचार।
द्रव्य-भाव, दो से गुन लो तो सात शतक अरु बीस विकार।।२।।
चेतन स्त्री तीन, करणत्रय, तीन योग अरु पंचेंद्रिय।
संज्ञा चार, कषाय सोलह, द्रव्य-भाव दो सब सक्रिय।।३।।
इन्हें गुणाकर जोड़ो तो सतरह सहस्र दो सौ अस्सी।
सब मिल दोष शील के अष्टादश सहस्र हैं दु:खमय ही।।४।।
इन सब दोषों को क्षय करके परम ब्रह्म में रम जाऊँ।
शुद्ध शीलगुण प्रकटाने को शुद्धआत्मा ही ध्याऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टादशसहस्रदोषरहितब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टादश सहस्र शीलगुण

अष्टादश सहस्र शीलगुण भेद जान लो भलीप्रकार।
दस लक्षण, प्राणी संयम अरु पंचेंद्रिय संयमसार।।१।।
संज्ञा चार गुप्ति तीन अरु तीन करण सब गुणा करो।
अष्टादश सहस्र शीलगुण महासाधु बन ग्रहण करो।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अष्टादशसहस्रदोषरहितब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौरासी लाख उत्तर गुण

परमोत्तम पावन उत्तर गुण हैं चौरासी लाख प्रकार।
हिंसादिक इक्कीस दोष, व्यतिक्रम आदिक हैं चार विकार।।१।।
पृथ्वी आदिक छह, द्वय, त्रय, चौ, पंचेंद्रिय जु चार, मिल दस।
इन्हें गुणा करने से होते आठ सहस्र चार सौ बस।।२।।

दस विराधना शील गुणा करने से भेद चुरासी हजार।
दस आलोचना दोष से गुन लो आठ लाख चालीस हजार।।३।।

शुद्धिरूप प्रायश्चित्त दस से गुन लो तो चौरासी लाख।
यही शील के उत्तर गुण हैं श्री सर्वज्ञ कथन विख्यात।।४।।

लाख चुरासी उत्तर गुण पाने का सतत प्रयत्न करूँ।
सकल महाव्रत सम्यक् पालूँ सर्व दोष सम्पूर्ण हरूँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री चौरासीलाखउत्तरगुणसम्पन्न मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(चान्द्रायण)

काम-भोग भवबंधन कारक हैं प्रभो।
कामबाण से पीड़ित हूँ मैं हे विभो।।१।।

भोग सर्प सम जान भोग सारे तजूँ।
उपभोगों की इच्छा तज निज को भजूँ।।२।।

पंचेंद्रिय सुख की अभिलाषा त्याग दूँ।
कामभाव जागे तो उसमें आग दूँ।।३।।

शील स्वभाव भाव में होकर संयमित।
इंद्रियसंयम प्राणीसंयम हो अमित।।४।।

आत्मब्रह्म में चर्या ही है ब्रह्मचर्य।
यही शीलगुण सभी गुणों में श्रेष्ठवर्य।।५।।

काम-भोग बंधन विकार से रीत लूँ।
आत्मशक्ति से कामभाव सब जीत लूँ।।६।।

परम श्रेष्ठ संयम हो प्रभु उर में अटूट।
ब्रह्मचर्य का सतत पिऊँ मैं अमृत घूँट।।७।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, शील स्वभाव सहेज।
निज बल से पाऊँ प्रभो, ब्रह्मचर्य का तेज।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(विजात)

चली पवन अब स्वशीलवाली तो आओ इसको गले लगाएँ।
स्वशील का ही स्वरूप निरखें विभावभावों को दूर भगाएँ।।१।।

विमोह विभ्रम का चक्र तोड़ें अशुद्धभावों से मुख को मोड़ें।
जो मिलके चारों कषाय आएँ तो हम न इनसे कभी ठगाएँ।।२।।

अभक्ष्यभक्षण से बचके अब तो अनीति अन्याय नष्ट कर दें।
महानचैतन्य भावना को सतत निरंतर सदा जगाएँ।।३।।

ये पाँचों पापों की वासनाएँ, ये सप्तव्यसनों की कामनाएँ।
अगर ये अपने ही पास आएँ तो भय से बिलकुल न डगमगाएँ।।४।।

ये राग-द्वेषों के जो महल हैं इन्हें धराशायी करना होगा।
विकार गिन-गिनके क्षय करें हम इन्हें रसातल में ही डुबाएँ।।५।।

नहीं हो एकान्तभाव उर में न कोई अज्ञान हो हृदय में।
हो स्वच्छ अंतर हमारा निर्मल स्वज्ञान दीपक ही जगमगाएँ।।६।।

न कामबन्धन, न भोगबन्धन , के भाव जागें हृदय में स्वामी।
हो शीलगुण से स्वयं सुशोभित, बनूँ हे प्रभुजी मैं मोक्षगामी।।७।।

ॐ ह्रीं श्री ब्रह्मचर्यमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

ब्रह्मचर्यव्रत की पूजन कर परंब्रह्म का ध्यान हुआ।
शीलभाव की महिमा आई रागभाव अवसान हुआ।।

रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगंबरवेश।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

卐

२०. श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारक मुनिराज पूजन

(दोहा)

रत्नत्रयधारी सुमुनि, अपरिग्रह के नाथ।
पूर्ण अनिच्छुक भाव से, बनते सुमुनि स्वनाथ।।
मैं भी अपरिग्रही बनूँ, इच्छाएँ दूँ त्याग।
एकमात्र निज चैतन्य से, ही हो अनुराग।।
अपरिग्रह पूजन करूँ, मूर्छा कर अवसान।
तज चौबीसों परिग्रह, बनूँ सुमुनि गुणवान।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(जोगीरासा)

अपरिग्रह का नीर सुनिर्मल जन्म-मृत्यु दुःख हरता।
इच्छाओं को जय करके मुनि आनंदामृत भरता।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह का शीतल चंदन ही भवताप विनाशक।
इच्छाओं को जय करता है निर्मल स्वपर प्रकाशक।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के अनुपम अक्षत अक्षयपद के दाता।
जो भी इनको पा लेता वह भवसागर तर जाता।।

महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।३।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के पुष्प अनूठे परमशील गुणदाता।
कामबाण के विध्वंसक हैं पद निष्काम प्रदाता।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।४।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के अनुभवरसमय पावन सुचरु चढाऊँ।
पूर्ण निराहारी हो जाऊँ शिवसुख स्रोत सजाऊँ।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।५।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के दीप ज्योतिमय अन्तर मध्य सँजोऊँ।
तज मिथ्यात्व एकान्तवाद को सम्यग्ज्ञानी होऊँ।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।६।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह की धूप ध्यानमय आठों कर्मविनाशक।
देती है आनंद अतींद्रिय लोकालोक प्रकाशक।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।७।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के फल लाऊँ शुद्ध मोक्षफल पाऊँ।
क्षय संसारभाव कर सारा शिवसुख हृदय सजाऊँ।।
महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर-बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।८।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अपरिग्रह के अर्घ्य ज्ञानमय मैं भी नाथ बनाऊँ।
पद अनर्घ्य की गरिमा पाऊँ त्रिभुवनपति बन जाऊँ।।

महाव्रतीमुनि अपरिग्रह से ही पहचाने जाते।
अन्तर–बाह्य परिग्रह त्यागी ही निज शिवपद पाते।।९।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्यावलि

चौदह अंतररंग परिग्रह रहित मुनिराज

(वीर)

इक मिथ्यात्व, वेद तीन, हास्यादिक छह, क्रोधादिक चार।
अंतरंग के यही परिग्रह चौदह घोर महादु:खकार।।
सभी परिग्रह अंतरंग के त्यागूँ हे प्रभु भलीप्रकार।
इनको त्यागे बिना न कोई भी मुनि होता है अविकार।।१।।

ॐ ह्रीं श्री अंतरंगचतुर्दशपरिग्रहविहीनअपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दस बाह्य परिग्रह रहित मुनिराज

क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, दास, दासी, पशु, यान व शैय्यासन।
वस्त्र तथा भोजन ये सब मिल बाह्य परिग्रह दस लो गिन।।
इनको त्यागे बिना दिगंबर मुनि होता न कभी निर्ग्रंथ।
इनके प्रति कुछ राग न हो उर इन्हें त्याग पालो शिवपंथ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री बाह्यदशपरिग्रहविहीनअपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समस्त चौबीस परिग्रह रहित मुनिराज

अंतरंग के चौदह बाह्य परिग्रह दस त्यागी मुनिराज।
सतत अनिच्छुक अपरिग्रही शक्ति से पाते निज पदराज।।
इन चौबीस परिग्रह के त्यागी होते हैं मुनि प्रत्येक।
उनको तो बस ध्यान योग्य है त्रैकालिक ध्रुव आत्मा एक।।३।।

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशन्तिपरिग्रहविहीनअपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(दोहा)

भवदु:खनाशक श्रेष्ठ है, अपरिग्रह की रीत।
बनूँ अनिच्छुक हे प्रभो, सकल परिग्रह जीत।।

(मत्तसवैया–नई चाल में)

मेरा चेतन अपने ही घर में बड़ी शान से देखो रहता है।
निज अनुभवरस नित पीता है समरस सरिता में बहता है।।१।।

रागों का राग नहीं उर में, आस्रव का भाव नहीं उर में।
संवर की महिमा से शोभित निर्जराभाव में रहता है।।२।।

मोहादि भाव जय कर लेगा कर्मादि रोग क्षय कर लेगा।
आनन्द अतींद्रिय धारा पा अपने में हर्षित रहता है।।३।।

सारा संसार विनश्वर है तन धन यौवन भी नश्वर है।
ध्रुव तो केवल है शुद्धात्मा यह चिंतन करता रहता है।।४।।

सम्यक् मुनिव्रत ये धारेगा अपनी छवि सतत निहारेगा।
परिषह उपसर्गजयी बनकर दुखड़े सम होकर सहता है।।५।।

परद्रव्यों का राग नहीं परभावों में अनुराग नहीं।
यह तो विभाव का त्यागी बन निज शुद्ध भाव ही गहता है।।६।।

यह मुक्तिभवन में जाएगा सिद्धों से ही बतियाएगा।
भवभय रागों के महल सभी यह पलभर में ही ढहता है।।७।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, व्रत अपरिग्रह श्रेष्ठ।
बनूँ अनिच्छुक हे प्रभो, तजूँ परिग्रह नेष्ठ।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(वीर)

अपरिग्रहधारी मुनिवर ही क्षय करते हैं चार कषाय।
नौ कषाय अरु सोलह मिल पच्चीस भेद प्रतिक्षण दु:खदाय।।१।।

जब तक ये उर में रहती हैं तब तक होता ज्ञान नहीं।
चार चौकडी नष्ट किए बिन होता केवलज्ञान नहीं।।२।।

अनंतानुबंधी कषाययुत क्रोध मान माया अरु लोभ।
घोर अधोगति की दाता है मिलता भवदु:खदायी क्षोभ।।३।।

मिथ्यात्व दुष्ट सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर का करता बन्ध।
जो इसको क्षय करता उसको समकित मिलता पूर्ण अबन्ध।।४।।

अप्रत्याख्यानावरणीयुत क्रोध मान माया अरु लोभ।
व्रत धारण करने में बाधक होती है यह भवदु:ख क्षोभ।।५।।

जो उसको जय कर लेता है पाता एकदेशसंयम।
अविरति जयकर हर्षित पाता उत्तम स्वर्गादिक बिन श्रम।।६।।

प्रत्याख्यानावरणीयुत जो क्रोध मान माया अरु लोभ।
यह प्रमाद ना जाने देती यह भी देती भवदु:खक्षोभ।।७।।

जो इसको जय कर लेता है वो महाव्रती हो जाता है।
पूर्ण देशसंयम पालन सर्वार्थसिद्धि तक जाता है।।८।।

अगर संज्वलन कषाययुत है क्रोध मान माया अरु लोभ।
क्षीण कषाय न होने देती नष्ट नहीं होता भवमोक्ष।।९।।

जो इसको जय कर लेता है मोह क्षीण फल पाता है।
केवलज्ञान प्रगट करता है निजानंद उर लाता है।।१०।।

(दोहा)

अपरिग्रह व्रत धारकर, जीतूँ सर्व कषाय।
चार चौकड़ी नष्ट कर, पाऊँ पद सुखदाय।।

ॐ ह्रीं श्री अपरिग्रहमहाव्रतधारकमुनिराजाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

अपरिग्रह की पूजन कर मेरा मन हो गया प्रसन्न।
पूर्ण अनिच्छुक बन कर स्वामी हो जाऊँ शिवसुख सम्पन्न।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उपदेश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

ॐ

२१. श्री पंचसमितिधारक मुनिराज पूजन

(वीर)

पंचसमितियों का परमादर करना है मुनि का कर्त्तव्य।
परम अहिंसाधर्म पालने का यदि उर में है मन्तव्य।।१।।

पहली ईर्यासमिति दूसरी भाषासमिति महासुखरूप।
तृतीय एषणासमिति चतुर्थम आदाननिक्षेपण गुणरूप।।२।।

प्रतिष्ठापना समिति पाँचवी धर्म अहिंसा वृद्धिकर।
ये ही पाँचों समिति पालने में मुनिश्री रहते तत्पर।।३।।

मैं भी इनको पालन करने का अवसर हे प्रभु पाऊँ।
भाव-द्रव्य पूजन करके प्रभु निज ज्ञायक को ही ध्याऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीपंचसमितिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीपंचसमितिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीपंचसमितिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सखी)

संयम जलधारा लाऊँ। त्रयरोग सकल विनशाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमचंदन उर लाऊँ। भवआतप पर जय पाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के अक्षत पावन। अक्षयपद देते धन-धन।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के पुष्प सजाऊँ। दु:ख कामबाण विनशाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।४।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के सुचरु चढ़ाऊँ। प्रभु क्षुधारोग विनशाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।५।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के दीप जलाऊँ। मिथ्यात्व मोह विनशाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।६।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम की धूप बनाऊँ। वसुकर्मों पर जय पाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।७।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के सुतरु उगाऊँ। फल मोक्ष सदा को पाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।८।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम का अर्घ्य बनाऊँ। पद श्रेष्ठ अनर्घ्य सु पाऊँ।।
प्रभु पंचसमिति उर धारूँ। रागादिक दोष निवारूँ।।९।।
ॐ ह्रीं श्री पंचसमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(ताटंक)

समिति प्रमादरहित होती है मुनि के मन को भाती है।
यत्नाचार सहित प्रवृत्ति ही सम्यक् समिति कहाती है।।१।।

आत्मा के प्रति सम्यक् परिणति हो वह उत्तम समिति महान।
निज परमात्मतत्त्व में हो लीनता वही है श्रेष्ठ प्रधान।।२।।

किसी जीव को रंच न पीड़ा पहुँचे वही समिति उत्तम।
दया स्वयं ही पल जाती है धर्म अहिंसा में सक्षम।।३।।

गमनादिक में प्रमादरूप होती प्रवृत्ति नहीं अणुभर।
मुनि रागादिविभाव त्याग रहते स्वध्यान में ही तत्पर।।४।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, पाँचों समिति विचार।
सम्यक् मुनि बनकर प्रभो, करूँ आत्मउद्धार।।५।।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीपंचसमितिधारकमुनिराजाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

रागों का दोष नहीं है है मात्र दोष चेतन का।
रागों से ही चिपका है है होश न अपने तन का।।१।।
भवभावों मे ही रहकर करता है सदा अहित निज।
चारों गतियों में बहता जीवंतशक्ति भूला निज।।२।।
संसार महादु:खसागर यह कब तक पार करेगा।
अन्याय अनीति आदि की दुर्गति कब क्षार करेगा।।३।।
संयम कब जागृत होगा कब तक पार करेगा।
अविरति प्रमाद की छाया को कब तक नाश करेगा।।४।।
कब तक मोहादि विजयकर निज का श्रद्धान करेगा।
कब अप्रमत्त होकर यह निज में ही वास करेगा।।५।।
चारों कषाय जयकर कब थल मोह क्षीण पाएगा।
कब प्रभु सर्वज्ञ स्वपद पा कैवल्यप्रकाश करेगा।।६।।
कब सिद्धपुरी जाएगा कब सिद्ध स्वपद पाएगा।
आनंद अतींद्रिय सागर कब उर में प्रगटाएगा।।७।।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीपंचसमितिधारकमुनिराजाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

पंचसमिति की पूजन करके जागा है उर में उल्लास।
यत्नाचार पूर्वक पालूँ जागे उर में दृढ़ विश्वास।।१।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।२।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

२२. श्री ईर्यासमितिधारक मुनिराज पूजन

(वीर)

प्रासुकपथ पर दिन में जूड़ा[१] प्रमाण देख चलते मुनिराज।
सावधान हो यत्नपूर्वक गमनागमन करें ऋषिराज।।
जीवों की रक्षा करते हैं पाल ईर्यासमिति महान।
मैं भी पूजन करूँ विनय से पाऊँ निज चारित्र महान।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीईर्यासमिमिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीईर्यासमिमिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीईर्यासमिमिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सार-जोगीरासा)

ज्ञान पराग स्वजल पाकर प्रभु निर्मलता उर लाऊँ।
जन्म-जरा-मरणादि रोग हर परम शान्त हो जाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धज्ञानरस गंध प्राप्तकर जिनपद भ्रमर कहाऊँ।
भवज्वर प्रभु सम्पूर्ण मिटाऊँ पूर्ण शान्तरस पाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानाक्षत धवलोज्ज्वल लाऊँ जिनपद अग्र चढ़ाऊँ।
अक्षयपद पाने को स्वामी सम्यक् मुनि बन जाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

१. चार हाथ

ज्ञानपुष्प की सुरभि प्राप्त कर कामव्यथा विनशाऊँ।
महाशील गुण प्राप्ति हेतु मैं सम्यक् मुनि बन जाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभवरसमय ज्ञान सुचरु पा परम तृप्त हो जाऊँ।
शुद्ध निराहारीपद पाकर परमामृतरस पाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानदीप से मोह नष्टकर आत्मज्योति प्रकटाऊँ।
निज शुद्धात्म तत्त्व को ध्याकर परम सुखी हो जाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानधूप की गंध अनूठी भावमयी अब लाऊँ।
अष्टकर्म की इकशत अड़तालीस प्रकृति विनशाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञान स्वतरु के फल समभावी शुक्लध्यान धर पाऊँ।
महामोक्षफल पाकर स्वामी त्रिलोकाग्र पद पाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानभाव के अर्घ्य बनाऊँ प्रभु पद भेंट चढ़ाऊँ।
पद अनर्घ्य पाने को शिवपथ पर चरण बढ़ाऊँ।।
प्रथम ईर्यासमिति पालकर सम्यक् मुनि बन जाऊँ।
जूड़ाप्रमाण[१] भूमि लखकर प्रभु आगे चरण बढ़ाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री ईर्यासमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१. चार हाथ

महार्घ्य

(वीर)

दिन में जूड़ाप्रमाण भू लख चलना ईर्यासमिति प्रधान।
प्रासुक भू पर ही पग रखता होता कभी न असावधान।।१।।
तीर्थक्षेत्र निर्वाणक्षेत्र या गुरुदर्शन का जागे भाव।
जागृत ईर्यासमिति पालकर लखता अपना आत्मस्वभाव।।२।।
केवल निज चैतन्य आत्मा ही है आराधन के योग्य।
अन्य नहीं कोई भी है पर अपने आराधन के योग्य।।३।।
शुद्धआत्मा का चिन्तन ही केवल एक प्रशंसा योग्य।
शुद्धआत्मा की उपासना ही मुक्ति प्राप्तिहित करने योग्य।।४।।
निज चैतन्य तेज उपमा से रहित निराकुल शुद्ध सदा।
अवक्तव्य है स्वज्ञान गोचर पूर्ण ज्ञानमय शिवसुखदा।।५।।
समभावी सामायिक से ही होता जीवों का कल्याण।
साम्यभाव ही मुक्तिभावना का है सर्वश्रेष्ठ सोपान।।६।।
जब भव से थकान लगती है तब होता तत्त्व विचार।
देह भोग से उदासीनता ही तब होती है साकार।।७।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, ईर्यासमिति प्रधान।
शुद्धज्ञान बल से प्रभो, पाऊँ पद निर्वाण।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीईर्यासमितिधारकमुनिराजाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

ईर्यासमिति प्रसिद्ध, परम अहिंसक है सदा।
गाऊँ इसके गीत, जब तक मुनिपद ना मिले।।

(मानव वल्लभ)

सुन्दर प्रभात जागा है जीवन में पहली बार।
समकित का सूर्य उगा है जीवन में पहली बार।।१।।
जप तप व्रत किरणावलि संग संयम ही धूप सुहायी।
अनुभवरसवाली धारा उर अंतर में लहरायी।।२।।

निर्मल प्रकाश छाया है आयी है मृदुल बहार।
सुन्दर प्रभात जागा है जीवन में पहली बार।।३।।
रत्नत्रयरूपी शिवपथ के मैंने दर्शन पाए।
परिणति ने पलक पाँवड़े स्वागत में सहज बिछाए।।४।।
अब देर न कुछ भी होगी हो जाऊँगा भवपार।
सुंदर प्रभात जागा है जीवन में पहली बार।।५।।
इंद्रादिक शीश झुकाते दुंदुभियाँ देव बजाते।
जितने हैं सिद्ध सभी मिल शिवसुख से मुझे सजाते।।६।।
आनंद अतींद्रिय सागर लहराता बारंबार।
सुंदर प्रभात जागा है जीवन में पहली बार।।७।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीईर्यासमितिधारकमुनिराजाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

पूजी ईर्यासमिति भाव से धर्म अहिंसक पाया शुद्ध।
निज परिणामों को सँवारकर हो जाऊँगा परम विशुद्ध।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

इन्द्रादि चक्रवर्ती के वैभव का तनिक न मान।
यह तीन लोक की संपत्ति धूलि सम ली है जान।।

निर्भार अतीन्द्रिय चिद्घन आनंदमूर्ति छविमान।
सुख-बलयुत सहजानंदी दर्शनमय ज्ञाननिधान।।

अपने स्वरूप का मुझको आया है निर्मल भान।
माता मेरी जिनवाणी हैं पिता वीर भगवान।।

२३. श्री भाषासमितिधारक मुनिराज पूजन

(सोरठा)

भाषासमिति विचार, मौन रहूँ स्वामी सदा।
कर्कश भाषा हास्य, परनिन्दा पैशून्य[१] तज ।।
वचनों के दस दोष, सभी पापसंयुक्त हैं।
हित मित प्रिय वच शुद्ध, असंदिग्ध बोलूँ सदा ।।
पूजन करूँ विशुद्ध, भाषासमिति महान की।
संशयनाशक शब्द, ही उचरूँ मुख से प्रभो ।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीभाषासमिमिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीभाषासमिमिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीभाषासमिमिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(गीतिका)

मोह क्षयकर्ता सुसम्यक् जल जिनागम से मिला।
जन्म-मृत्यु-जरा विनाशक ज्ञानअम्बुज[२] उर खिला ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहज्वाला विनाशक चंदन जिनागम से मिला।
भवाताप विनाशकर्ता ज्ञानरवि उर में झिला ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहक्षय के हेतु अक्षत गुण जिनागम से मिला।
स्वपद अक्षय प्राप्त करने को स्वबल उर में खिला ।।

१. चुगली करना २. कमल

प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनाशक पुष्प पावन श्री गुरुवर से मिले।
कामबाण विनाशकर्ता पूज्य मुनिवर भी मिले ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनाशक सुचरु रसमय श्री गुरुवर से मिले।
क्षुधारोग विनाशकर्ता पूज्य मुनिवर भी मिले ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनाशक स्वदीपक ज्योति गुरुवर से मिली।
उसी क्षण कैवल्य पाने की सुबेला उर झिली ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मनाशक धूप पावन श्री गुरुवर से मिले।
अष्टकर्म विनाश की विधि जिनेश्वर से ही मिली ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहहर फल मुक्तिदाता श्री गुरुवर से मिली।
मोक्षसौख्य प्रधान अधिपति प्रभु जिनेश्वर भी मिले ।।
प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहनाशक अर्घ्य की विधि श्री गुरुवर से मिली।
पद अनर्घ्य महान पाने की कला उर में झिली ।।

प्रभो भाषासमिति पालूँ मौन होकर सर्वदा।
अगर बोलूँ तो स्वहित-मित-प्रिय वचन बोलूँ सदा।।९।।

ॐ ह्रीं श्री भाषासमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(उपजाति)

कौतूहली बन मरकर भी चेतन, शुद्धात्मा निज अपनी परख लो।
शाश्वत सुखों की यदि चाह है तो, अपने अनंतों गुण तुम निरख लो।।

(वीर)

भाषासमिति पालने वाले ही होते हैं श्री मुनिराज।
हित मित भाषा अथवा महामौनधारी होते ऋषिराज।।१।।
नहीं मोक्ष का राग हृदय में नहीं बंध के प्रति है द्वेष।
निस्पृह निर्ममत्व हैं सबसे बाह्यान्तर निर्ग्रंथ स्ववेश।।२।।
सब प्रकार के अन्तराय को टाल लिया करते भोजन।
तत्क्षण मौन वनों में जाते हो जाते निज ध्यान मगन।।३।।
कोई अर्घ्य उतारे गाली दे या असि से करे प्रहार।
तो भी मुनिवर समभावी रह करते वस्तुस्वरूप विचार।।४।।
उत्तम मध्यम जघन्य करते केशलोच आगम अनुसार।
प्रासुक भू पर रात्रिशयन कुछ अदंतधोवन ही श्रृंगार।।५।।
आदि-आदि गुण अनंत भूषित रत्नत्रयधारी महाराज।
एक दिवस पा ही लेते हैं निज बल से ही निज पदराज।।६।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, भाषासमिति महान।
महामौन गुण प्राप्तकर, करूँ आत्मकल्याण।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीभाषासमितिधारकमुनिराजाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

कल्याण चाहते हो तो हित मित प्रिय भाषा बोलो।
हितकारी साम्यभावरस अपने अंतर में घोलो।।१।।

रागादिभाव से बचकर रहना तुम मेरे चेतन।
पर परिणति के बहकावे में तुम मत आना चेतन।।२।।

निज परिणति के कहने में तुम चलना सतत् निरंतर।
सम्यक्त्वभावना भाना उर भेदज्ञान ही दृढ़ कर।।३।।

जब समकितनिधि मिल जाए तो निज का अनुभव करना।
चारित्र स्वरूपाचरणी अपने अन्तर में धरना।।४।।

फिर संयम का रथ आए तो उस पर झट चढ़ जाना।
सप्तम-षष्टम में रहकर शिवपथ पर स्वरथ बढ़ाना।।५।।

श्रेणी चढ़ने की बेला का हो बहुमान हृदय में।
तुम यथाख्यात पाओगे जाओगे आत्मनिलय में।।६।।

घातिया चार क्षय करके अरहंत दशा पा लोगे।
फिर क्षय अघातिया भी कर निजसिद्ध स्वपद झेलोगे।।७।।

जय-गान तुम्हारा गाएँगे इन्द्रादिक सुर किन्नर।
बस एक बार तो कर लो रत्नत्रयभक्ति ध्यानधर।।८।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीभाषासमितिधारकमुनिराजाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

भाषासमिति पूजकर मैंने जान लिया है मौन महत्त्व।
धीरे-धीरे प्रभो अवतरित हो जाएगा शुद्ध समत्व।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

२४. श्री एषणासमितिधारक मुनिराज पूजन

(चौपई)

शुद्ध एषणासमिमित प्रधान। पालन करते सुमुनि महान।।
सुतप वृद्धि हित लें आहार। अन्तराय दोष सब टार।।
तजते उद्देशिक आहार। नहीं रसों के प्रति है प्यार।।
भोजन प्रासुक शुद्ध प्रशस्त। लेते तजकर राग समस्त।।
नहीं याचना करते भूल। छठे-सातवें झूला झूल।।
यही एषणा समिति विशुद्ध। पूजन करके बनूँ विशुद्ध।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीएषणासमिमिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीएषणासमिमिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीएषणासमिमिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

कैवल्यचंद्र से निर्मल जल पाऊँ आज सुपावन।
जन्मादि रोगत्रय नाशूँ निजपुर जाऊँ मनभावन।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।१।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यचंद्र चंदन का नन्हा सा तिलक लगाऊँ।
भवज्वर हर शीतलता को मैं अपने हृदय बसाऊँ।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।२।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञान अक्षत से क्षत भावमरण हो जाता।
अक्षयपद मिल जाता है जिय आत्मशरण पा जाता।।

एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।३।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जब केवलज्ञानपुष्प की ध्रुव गंध हृदय को भाती है।
चिर काम नाश हो जाता आत्मा स्वशील पाती है।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।४।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञान के चरु ही चिर तृप्ति प्रदायक पावन।
हैं क्षुधारोग विध्वंसक गणधर ऋषि के मनभावन।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।५।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञान के दीपक उर में प्रकाश भरते हैं।
मिथ्यात्व मोहतम पूरा पलभर में ही हरते हैं।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।६।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञान की पावन ध्यान धूप शिवदायी।
वसुकर्म जला देती है जो हैं अनंत दु:खदायी।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।७।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञानतरु फल ही है महामोक्ष फलदाता।
निज ज्ञानानंद स्वरूपी फल देते श्रुत विख्याता।।
एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।८।।

ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

कैवल्यज्ञान अर्घ्यावलि है गुण अनंतमय उत्तम।
पदवी अनर्घ्य देने में सम्पूर्णतया है सक्षम।।

एषणासमिति पालूँ मैं सम्यक् हे अन्तर्यामी।
टालूँ सब दोष छयालीस आहार हेतु हे स्वामी।।९।।
ॐ ह्रीं श्री एषणासमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

सम्यग्दर्शन शुद्ध प्राप्त करके जिन मुनि बनूँ हे प्रभो।
पालूँ मैं एषणासमिति सम्यक् अनुभूति निज की करूँ।।१।।
मैं तो हे प्रभु शुद्ध ज्ञान भोजन पाऊँ स्वपर ज्ञानमय।
पर का भी कल्याण करूँ स्वामी निर्ग्रंथ होकर अभी।।२।।

(वीर)

सर्व एषणादोष त्यागकर ही लेते मुनिवर आहार।
उद्देशिक[1] भोजन तज देते वापस जाते बिन आहार।।३।।
सोलह उद्‌गमदोष और उत्पादन के हैं सोलह दोष।
अशनदोष[2] दस भी तज देते तजते चार एषणादोष।।४।।
ये सब दोष टालते मुनिवर तब लेते प्रासुक आहार।
अंतराय हो जाता कोई तो तज देते हैं आहार।।५।।
दोष जानते हैं आहार ग्रहण को श्री मुनि हैं अविकार।
निराहार पद पाने को उत्सुक रहते हैं वे हर बार।।६।।

(दोहा)

महा अर्घ्य अर्पण करूँ, परम विनय से आज।
दोष एषणा त्यागते, वीतराग मुनिराज।।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीएषणासमितिधारकमुनिराजाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

रजनी के अँधियारे को दिनकर उजियाला नाशे।
चेतन जागृत हो जाए अपना स्वरूप जब भासे।।१।।
कर्मों की कड़ियाँ टूटें ध्वज समयसार फहराए।
आनन्द अतीन्द्रिय धारा प्रतिफल प्रतिक्षण लहराए।।२।।

१. उदिष्ट २. भोजन

परिणति निज पीछे दौड़े नित आँख-मिचौली खेले।
तो यह चैतन्य स्वरूपी अपनी बाँहों में ले ले।।३।।
भवसागर क्षय हो जाए जब समयसार निज ध्याए।
अपने स्वभाव के बल से अपने में पूर्ण समाए।।४।।
जितने भी सिद्ध हुए हैं या जो आगामी होंगे।
अपने स्वभाव साधन का बल पाकर ही वे होंगे।।५।।
संयमित जीव जो होते वे ही शिवसुख पाते हैं।
अतिक्रमण किया करते जो वे ही भवदु:ख पाते हैं।।६।।
अपराध नहीं होगा तो फिर प्रायश्चित्त क्यों होगा।
अतिक्रमण नहीं होगा तो प्रतिक्रमण कहो क्यों होगा।।७।।
अविरति का दोष नहीं तो फिर प्रत्याख्यान करूँ क्यों।
मैं स्वयं तीर्थपति जिनसम तो करूँ तीर्थयात्रा क्यों।।८।।
परिपूर्ण ज्ञान का सागर तो फिर अज्ञान हरूँ क्यों।
अतिसरण नहीं है तो फिर बोलो प्रतिसरण करूँ क्यों।।९।।
निन्दा गर्हा जो भी हो वह मुझमें नहीं मिलेगी।
अविलंब चलूँ शिवपथ पर तो पंचम स्वगति मिलेगी।।१०।।
मैं अमृतकुंड पूरा हूँ विषकुम्भ सँभाल धरूँ क्यों।
मैं मुक्त स्वरूप सदा से भवमार विशाल हरूँ क्यों।।११।।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीएषणासमितिधारकमुनिराजाय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

समिति एषणा पूजन करके परम तृप्त मैं हो जाऊँ।
सम्यक्‌विध से बनूँ निराहारी मैं पूर्ण सौख्य पाऊँ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

२५. श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारक मुनिराज पूजन

(विधाता)

समिति आदाननिक्षेपण पालते वीतरागी मुनि।
कमंडल शास्त्र पीछी को उठाते और धरते मुनि।।१।।
यत्न से ग्रहण करते हैं यत्न से ही इन्हें धरते।
प्रमाद रहित होकर के क्रिया सम्यक् सहज करते।।२।।
भावपूर्वक करूँ पूजन समिति आदाननिक्षेपण।
पूर्ण संयम हृदय धारूँ करूँ शुद्धात्म का चिन्तन।।३।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीआदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीआदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीआदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(विधाता)

ज्ञानमय भावना वाला स्वजल प्रभु शीघ्र लाऊँगा।
आपके चरण में अर्पित करूँगा दु:ख मिटाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।१।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना चंदन हृदय में प्रभु सजाऊँगा।
ताप संसार का हर कर हृदय शीतल बनाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।२।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना अक्षत गुणमयी शीघ्र लाऊँगा।
प्राप्त अक्षय स्वपद करने भवोदधि पार जाऊँगा।।

सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।३।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय अक्षयप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना के पुष्प सुरभित शीघ्र लाऊँगा।
काम की पीर क्षय करके शीलगुण नाथ पाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।४।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना नैवेद्य स्वानुभवमयी लाऊँगा।
क्षुधा की आग नाशूँगा तृप्त पद शीघ्र पाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।५।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना दीपक ज्योतिमय शीघ्र लाऊँगा।
मोहमद नाश केवलज्ञान की विधि नाथ पाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।६।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय मोहांधकारविनाशनाशय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना की धूप उर में देव लाऊँगा।
धर्म अरु शुक्लध्यानी बन कर्म आठों नशाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।७।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना के फल चरण सविनय चढ़ाऊँगा।
मुक्तिफल प्राप्त करने को चरण आगे बढ़ाऊँगा।।
सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।८।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय भावना के अर्घ्य अनुपम शीघ्र लाऊँगा।
स्वपद पाऊँ अनर्घ्य अपना यही विधि नाथ पाऊँगा।।

सदा पालूँ प्रभो सम्यक् समिति आदाननिक्षेपण।
उठाऊँ या धरूँ वस्तु प्रमादों से रहित उस क्षण।।९।।

ॐ ह्रीं श्री आदाननिक्षेपणसमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

पिछी कमंडल शास्त्र आदि उपकरण उठाऊँ धरूँ सम्हार।
धर्म अहिंसा पालूँ प्रतिपल बनूँ अहिंसक परम उदार।।१।।
दयाभाव का अधिपति बनकर करुणा का समुद्र पाऊँ।
समिति पूर्ण आदाननिक्षेपण पालूँ निज आतम ध्याऊँ।।२।।
व्रतियों के व्रत धारण का फल मात्र समाधिमरण विख्यात।
कोई भी व्रत भंग न हो प्रभु आत्मध्यान ही हो प्रख्यात।।३।।
क्रम-क्रम काय कषाय कृश करूँ परिषह बाईसों जीतूँ।
उपसर्गों पर भी जय पाऊँ राग-द्वेष से मैं रीतूँ।।४।।
उदय असाता वेदनीय का सतत असाता लाता है।
अगर असाता उपशम हो तो नश्वर साता पाता है।।५।।
अतः कषायों को कृश करना अभ्यंतर कर्त्तव्य महान्।
तथा बाह्य में कायाकृश करना ही है निज कार्य प्रधान।।६।।
इसप्रकार जय कषाय होती अकषायी बनता प्राणी।
अकषायी बनते ही प्राणी हो जाता केवलज्ञानी।।७।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, चौथी समिति महान।
आत्मध्यान में रत रहूँ, करूँ कर्म अवसान।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीआदाननिक्षेपणसमितिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दिग्पाल)

रागादिभाव मेरा कुछ कर नहीं सकते हैं।
सारे ही राग मिलकर छू भी नहीं सकते हैं।।१।।

चैतन्यतत्त्व हूँ मैं संसार से निराला।
गुण हैं अनंत मेरे ये हर नहीं सकते हैं।।२।।
आनन्दघन हूँ मैं तो चिन्मय हूँ शुद्धचेतन।
मेरे स्वभाव का ये कुछ कर नहीं सकते हैं।।३।।
जो वीतरागी मुनि हैं निज ज्ञान ध्यानरत हैं।
संवर के जो हैं स्वामी वे डर नहीं सकते हैं।।४।।
जो राग में उलझे हैं आस्रव का गरल पीते।
कितने भी व्रत करें वे पर तर नहीं सकते हैं।।५।।
ज्ञानी के आत्मनभ में उमड़े हैं मेघ रसमय।
अज्ञानी के अंतर में वे झर नहीं सकते हैं।।६।।
रत्नत्रयी बने बिन आस्रव नहीं रुकता है।
ये पुण्य-पाप पल भर भी हर नहीं सकते हैं।।७।।
आनन्द अतीन्द्रिय का सागर है निज के अन्दर।
अपने स्वघट में अज्ञान तो भर नहीं सकते हैं।।८।।
जब तक है आयु का बल जीवन भी है तभी तक।
बिन आयु अंत कोई भी मर नहीं सकते हैं।।९।।
कल्याण चाहते हो तो बनो शुद्ध ज्ञायक।
ज्ञायक बने बिना हम कुछ कर नहीं सकते हैं।।१०।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीआदाननिक्षेपणसमितिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

आज समिति आदाननिक्षेपण की पूजनकर हर्ष हुआ।
धर्म अहिंसा पालन की विधि जानी निज उत्कर्ष हुआ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

२६. श्री प्रतिष्ठापनसमितिधारक मुनिराज पूजन

(तांटक)

प्रतिष्ठापनासमिति यही व्युत्सर्गसमिति कहलाती है।
परम संयमी मुनियों को यह निश्चय समिति सुहाती है।।१।।
प्रासुक भू पर यत्नपूर्वक देखभाल करते मलत्याग।
महामुनीश्वर शुद्ध स्वपरिणति से करते सदैव अनुराग।।२।।
हो प्रमाद से रहित यत्न से तन मल मूत्रादिक तजते।
जीवरहित भू देख त्याग मल निज स्वभाव को ही भजते।।३।।
प्रतिष्ठापनासमिति शुद्ध की पूजन करता आज विशेष।
कब प्रभु ऐसा अवसर पाऊँ धारूँ ऐसा जिन मुनिवेश।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(जोगीरासा)

निज अनुभवरस नीर चढ़ाऊँ हृदय विवेक जगाऊँ।
जन्म जरा मरणादि व्याधि हर शाश्वत निज पद पाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।१।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनामितिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनुभव चंदन की शोभा से शोभित हो जाऊँ।
भवाताप की आग बुझाऊँ प्रभु शीतल हो जाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।२।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत शुद्ध स्वानुभव लाऊँ अक्षयपद प्रकटाऊँ।
स्वपद निराहारी मैं पाऊँ परम तृप्त हो जाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभवपुष्प सुगंधित लाऊँ महाशीलगुण पाऊँ।
कामबाण विध्वंसक बनकर शीलसिन्धु उर लाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सुचरु स्वानुभव रसमय लाऊँ आत्मध्यान के द्वारा।
क्षुधाव्याधि सर्वांश नाशकर त्यागूँ भवदुःखकारा।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।५।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनुभवघृत दीप ज्योति पा होऊँ आतमध्यानी।
मोह क्षीणकर घाति चार हर होऊँ केवलज्ञानी।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।६।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनुभव की ध्यानधूप ले प्रभु वसुकर्म नशाऊँ।
भव के सकल दोष क्षय करके ध्रुव सिंहासन पाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।७।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनुभव के सुतरु उगाकर महामोक्षफल पाऊँ।
शिवसुख सुधा सरोवर पाऊँ मंगलमय हो जाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध स्वानुभव सम्यक् विधि के अर्घ्य अपूर्व बनाऊँ।
पद अनर्घ्य अविलम्ब प्रकटकर ध्रुवधामी बन जाऊँ।।
प्रतिष्ठापनासमिति पालकर हे प्रभु निज में आऊँ।
प्रासुक भू पर तन मल त्यागूँ परम शान्ति प्रभु पाऊँ।।९।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(उपजाति)

पालन प्रतिष्ठापनासमिति का, मुनिराज का है कर्त्तव्य पावन।
तब भक्ति रत्नत्रय शुद्ध होती, मुनिराज बनते आनंद के घन।।

(चौपई)

निश्चय रागद्वेष मल त्याग। पाऊँ ध्रुव चारित्र पराग।।
साम्यभाव रस निज सुखदाय। विषयभाव पूरा दुःखदाय।।१।।
समकित के हैं दोष पच्चीस। देते हैं भव-भव तक टीस।।
इन्हें नष्ट करके मतिमान। समकित पाते महिमावान।।२।।
आठ अंगयुत सम्यग्ज्ञान। करता है सबका कल्याण।।
तेरहविध सम्यक्चारित्र। महासौख्यदाता सुपवित्र।।३।।
ये ही है रत्नत्रययान। इससे ही मिलता निर्वाण।।
पंचसमितियों का शृंगार। त्वरित करो हो लो अविकार।।४।।
पुण्य-पाप करके परिहार। निजसुख पाओ अपरंपार।।

(दोहा)

महा अर्घ्य अर्पण करूँ, धारूँ स्वपर विवेक।
प्रतिष्ठापनासमिति धर, पाऊँ गुण प्रत्येक।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(विधाता)

विभावी भाव करके जो कर्म के बंध करता है।
उदय जब कर्म आते हैं तो उनको उर में धरता है।।१।।

दुःखी होता है कर्मों से सुखी होता न कर्मों से।
नरक पशुगति में जाता है स्वर्ग में देह धरता है।।२।।

एक दिन स्वर्ग से गिरता अधोगति में ये जाता है।
भाग्य से फिर मनुज भव पा कर्म खोटे ही करता है।।३।।

परावर्त्तन ये करता है सदा पाँचों महादुःखमय।
नहीं घबराता है इनसे पुनः ये बंध करता है।।४।।

अगर निज को निरख ले ये तनिक निज को परख ले ये।
तो सम्यग्ज्ञान पाते ही भवोदधि दुक्ख हरता है।।५।।

अगर मिल जाय रत्नत्रय समिति सम्यक् सतत् पाले।
तो त्रिभुवन का तिलक बनकर मुक्तिसुख उर में भरता है।।६।।

अगर निर्वाणसुख चाहो तो कर लो ध्यान सम्यक् अब।
जिनागम घोषणा पूर्वक यही जयघोष करता है।।७।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीप्रतिष्ठापनासमितिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

आज समिति आदाननिक्षेपण की पूजनकर हर्ष हुआ।
धर्म अहिंसा पालन की विधि जानी निज उत्कर्ष हुआ।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

२७. श्री तीनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन

(तांटक)

मोक्षमार्ग में तीनगुप्ति का संबल है बहु सुखदायी।
यह संसार भाव क्षयकर्ता जो भव-भव तक दुःखदायी।।१।।
मनोगुप्ति बिन व्रतशीलादिक पालन करना निष्फल है।
मनोगुप्तिधारी मुनि होते सच्चे मन से निर्मल हैं।।२।।
वचनगुप्ति से ही असत्य की निवृत्ति होती है परिपूर्ण।
परम सत्य की प्रवृत्ति ही है एकमात्र सुखप्रद सम्पूर्ण।।३।।
कायगुप्तिधारी ही होते करुणा के समुद्र मुनिराज।
परम जितेन्द्रिय परम अहिंसक होकर पाते निज पदराज।।४।।
रत्नत्रय की भक्तिपूर्वक तीनगुप्ति सम्यक् धारूँ।
परम श्रेष्ठ निर्वाणभक्ति पा भवसागरदुःख निर्वारूँ।।५।।

(दोहा)

तीनगुप्ति पूजन करूँ, अपने में हो गुप्त।
परम संयमी बनूँ प्रभु, राग-द्वेष कर लुप्त।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीतीनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीतीनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीतीनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

निज अनुभवरस नीर चढ़ाऊँ हृदय विवेक जगाऊँ।
जन्मादि रोग क्षय के हित निज में ही चरण बढ़ाऊँ।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।१।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान चंदन की महिमा उर में आयी है।
संसारताप क्षय करने की सुरुचि हृदय भायी है।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।२।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान के अक्षत अक्षयपद दाता उत्तम।
भवसागर तर जाने को जग विख्याता सर्वोत्तम।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।३।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान उपवन के पुष्पों को हृदय सजाऊँ।
चिर कामवासना पीड़ा विनशा सुशील हो जाऊँ।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।४।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यानरस निर्मित नैवेद्य बनाऊँ स्वामी।
भवव्याधि क्षुधा को क्षयकर सुख पाऊँ अन्तर्यामी।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।५।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान के दीपक ज्योतिर्मय हृदय जगाऊँ।
अज्ञानतिमिर भ्रम क्षयकर कैवल्यज्ञान प्रकटाऊँ।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।६।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान की निरुपम निज धूप ध्यानमय लाऊँ।
वसुकर्म समुद्र विनाशूँ पद नित्य निरंजन पाऊँ।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।७।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान तरुवर के फल श्रेष्ठ मोक्षफल दाता।
निर्भार अतीन्द्रिय सुखप्रद पूर्णोदय रवि विख्याता।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।८।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय महामोक्षप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान के वसुगुणमय अर्घ्य अनूप बनाऊँ।
ध्रुवपद अनर्घ्य निज पाकर निज शाश्वत सौख्य सजाऊँ।।
त्रयगुप्ति साधना समकित बिन कभी नहीं होती है।
ग्रीवक तो मिल सकता है पर मुक्ति नहीं होती है।।९।।

ॐ ह्रीं श्री तीनगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वीर)

आत्मभान पूर्वक आत्मा में सतत लीन होना है गुप्ति।
मन वच काय अरु भोग-उपभोग प्रवृत्ति रोकना निश्चय गुप्ति।।१।।
भले प्रकार योग का निग्रह करना ही है उत्तम गुप्ति।
मन वच तन की चंचलता को सदा रोकना ही है गुप्ति।।२।।
रागादिक भावों से अपनी आत्मा की रक्षा करना।
निर्विकल्प अपने स्वरूप में सदा गुप्त हो दुःख हरना।।३।।
निज अखंड अद्वैत परम चिद्रूप स्वात्मा में स्थित हो।
सब संकल्प विकल्प छोड़ निज समता गृह में सुस्थित हो।।४।।
वसुप्रवचनमातृका श्रेष्ठ ही पंचसमिति त्रयगुप्ति महान।
इन्हें धार शिवभूति सुमुनि ने प्राप्त किया निज पद निर्वाण।।५।।
मैं भी ऐसा यत्न करूँ प्रभु इन्हें धार शिवपद पाऊँ।
अंतरंग-बहिरंगगुप्ति त्रय पालूँ निज को ही ध्याऊँ।।६।।
मनोयोग में चार जीत लूँ वचनयोग भी जीतूँ चार।
काययोग सातों भी जीतूँ जीतूँ पंद्रह भलीप्रकार।।७।।

(दोहा)

महा अर्घ्य अर्पण करूँ तीनगुप्ति उर धार।
निज स्वरूप में गुप्त हो पाऊँ पद अविकार।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीतीनगुप्तिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

तीनगुप्ति धारण करूँ, करूँ स्वयं में वास।
आप कृपा से हे प्रभो, पाऊँ मुक्तिनिवास।।
स्वाध्याय की भावना, जागे हृदय महान।
दिव्यध्वनि की स्वध्वनि सुन, करूँ प्रभो कल्याण।।

(वीर)

जिन आगम का सार जानकर जागे रत्नत्रय मंतव्य।
मुक्तिप्राप्ति का सतत यत्न करना ही हो सबका कर्त्तव्य।।१।।
पंचमहाव्रत पंचसमिति त्रयगुप्ति त्रयोदशविध चारित्र।
इसको धारण करके प्राणी हो जाते हैं पूर्ण पवित्र।।२।।
गुणस्थान चौदह सब जानूँ क्रम-क्रम चौदहवाँ लाऊँ।
हो अयोग केवली जीत चौदहवाँ सिद्ध स्वपद पाऊँ।।३।।
सभी मार्गणा चौदह जानूँ इनसे भी मैं जाऊँ रीत।
चौदह जीवसमास जानकर इन सबके भी लूँ मैं जीत।।४।।
भय मैथुन आहार परिग्रह चारों संज्ञाएँ जीतूँ।
पंचपरावर्त्तन से स्वामी सदा-सदा को ही रीतूँ।।५।।
कोटि-कोटि कुल त्यागूँ स्वामी त्यागूँ योनि चुरासी लाख।
इकशत पापप्रकृति अरु अड़सठ पुण्यप्रकृतियाँ कर दूँ राख।।६।।
सातों समुद्घात मैं जानूँ केवलिसमुद्घात पाऊँ।
मुक्तिप्राप्ति का सतत यत्न करना ही हो सबका कर्त्तव्य।।७।।
आर्त्तरौद्र ध्यानों को छोड़ूँ धर्म शुक्ल पा बनूँ स्वनाथ।
क्षय पच्चीस कषायें कर दूँ अकषायी हो जाऊँ नाथ।।८।।
पंचवर्गणाएँ भी त्यागूँ पंचशरीर त्याग दूँ नाथ।
नव क्षायिकलब्धियाँ प्राप्तकर बन जाऊँ मैं नाथ स्वनाथ।।९।।
मिथ्यात्वादिक पाँचों प्रत्यय सब ही क्षयकरके मानूँ।
सैंतालीसनयों को समझूँ सैंतालीसशक्ति जानूँ।।१०।।
द्रव्यास्रव दो, भाव आस्रव पाँच त्यागकर बनूँ प्रवीण।
द्रव्यबंध चारों ही त्यागूँ भावबंध भी त्यागूँ तीन।।११।।

आस्रव बंध सर्व क्षय कर दूँ पाऊँ निज सिद्धत्व प्रकाश।
आत्मशक्ति की प्रबल भक्ति से मुक्तिभवन में करूँ निवास।।१२।।

पंचमगति पाने को उत्तम विधि रत्नत्रय श्रेष्ठ महान।
इसे धारने वाले ही पाते हैं शिवसुखमय निर्वाण।।१३।।

मैं परमात्मा हूँ यह दृढ़निश्चय करके रत्नत्रय धारूँ।
रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु प्रभु तन मन धन सब कुछ वारूँ।।१४।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीतीनगुप्तिधारक मुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

तीनगुप्ति की पूजन करके पाऊँ निज की शुद्ध सुवास।
वसुप्रवचन मातृका धारकर निज आत्मा में करूँ निवास।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

भजन

राग का राग मुझे रास नहीं आता है।
इसके नाशे बिना प्रकाश नहीं आता है।।१।।

ये अकल्याण के लाने में अग्रणी पूरा।
जो भी करता है इसे घोर कष्ट पाता है।।२।।

जो इसे नष्ट करके प्राप्त करता है समकित।
वही तो मोक्ष की मंजिल सदैव पाता है।।३।।

निज की छाया में प्राप्त करता है जो रत्नत्रय।
वही तो सिद्ध बनके मुक्ति सौख्य पाता है।।४।।

ॐ

२८. श्री मनोगुप्तिधारक मुनिराज पूजन

(चौपई)

मनोगुप्ति धारूँ जिनराज। आत्मलीनता का है काज।।
मन चंचलता दूर करूँ। मन के सकल विकार हरूँ।।
अपना हृदय बनाऊँ शुद्ध। हो जाऊँ मैं परम विशुद्ध।।
मनोगुप्ति पूजनकर नाथ। मन को वश कर बनूँ स्वनाथ।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

धर्मध्यान का ही जल लाऊँ। जन्म जरादिक दोष मिटाऊँ।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।१।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान का ही चंदन लूँ। चिर संतापताप क्षयकर लूँ।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।२।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान के निज अक्षत गुण। नाश सर्व कर देते दुर्गुण।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।३।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान की ही कुसुमांजलि। कामभाव नाशक पुष्पांजलि।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।४।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान के ही चरु लाऊँ। क्षुधारोग दुःख पर जय पाऊँ।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।५।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान है विमल स्वद्युतिमय। पाऊँ केवलज्ञान ज्योतिमय।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।६।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान की ही स्वधूप लूँ। नित्य निरंजन निज स्वरूप लूँ।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।७।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान के ही फल पाऊँ। पावन पूर्ण मोक्षफल पाऊँ।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।८।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्मध्यान के अर्घ्य सजाऊँ। पद अनर्घ्य अविनश्वर पाऊँ।।
मनोगुप्ति ही मनवश कर्त्ता। सर्व शुभाशुभ आस्रवहर्त्ता।।९।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(सार जोगीरासा)

मन की चंचलताएँ रोकूँ शक्ति पूर्वक स्वामी।
मन की ओर उपयोग न जाए बल दो अन्तर्यामी।।१।।
मोह राग द्वेषादि जीत लूँ निज में रहूँ व्यवस्थित।
मनोगुप्ति अचलित हो पालूँ हो स्वरूप में सुस्थित।।२।।
सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, चारों मनयोग तजूँ मैं।
निज स्वरूप का दर्शन करके निज को सदा भजूँ मैं।।३।।
समकित के बिन जप तप संयम व्रत सब शून्य कहाते।
समकित के बिन ये अनाथ हैं रंच न हित कर पाते।।४।।
जप तप व्रत संयम के पहले समकित अंगीकार करूँ।
फिर इनका बल लेकर के प्रभु अष्टकर्म संहार करूँ।।५।।
बिन समकित जप तप सब झूठे झूठा सारा संयम।
रत्नत्रय भी इसके बिन, है मोक्षमार्ग में अक्षम।।६।।
समकित के बिन ज्ञान सुफल का प्रादुर्भाव न होता।
समकित के बिन तो चेतन का शुद्ध स्वभाव न होता।।७।।

(दोहा)

महा अर्घ्य अर्पण करूँ, मनोगुप्ति सुखदाय।
इसके बिन शिवमार्ग में, साधक है असहाय।।

ॐ ह्रीं श्री परमअहिंसामयीमनोगुप्तिधारक मुनिराजाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

द्रुम-द्रुम शहनाई गूँजी समकित की लहर उठी रे।
सम्यग्ज्ञानी को अब तो निज की ही हूक उठी रे।।१।।
ज्ञानी अलिप्त है पर से वह तो है ज्ञानस्वभावी।
पर मात्र जानता रहता निज को परद्रव्य अभावी।।२।।
कर्मोदय से मत जुड़ तू स्वयमेव झरेंगे फल दे।
नूतन न बंध फिर होगा जाएँगे तुझको बल दे।।३।।
शुभ-अशुभ भेद मतकर तू दोनों ही बंधन कारक।
अपने ही भीतर रह तू, तू तो है सदा अकारक।।४।।
निज गुण मणि सज्जा से सज शक्तियाँ प्रकटकर अपनी।
नैराश्यभावना तज दे तेरी तो द्युति है अपनी।।५।।
चैतन्य स्वभाव रूप से उपलब्धमान ज्ञानी को।
असमर्थ सदा अनुभव में मिलता कब अज्ञानी को।।६।।
अनुभवगोचर है आत्मिकसुख प्रतिपल हर प्राणी को।
आनन्द अतीन्द्रिय पूरा मिलता सम्यग्ज्ञानी को।।७।।

(वसंततिलका)

शुद्धात्मतत्त्व मेरा महिमामयी है।
कैवल्यज्ञान स्वामी गरिमामयी है।।
आनन्दसिन्धु अनुपम इसमें भरा है।
अपूर्ण सौख्य सागर भवदुःखजयी है।।

ॐ ह्रीं श्री मनोगुप्तिधारक मुनिराजाय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

मनोगुप्ति की पूजन की है मैंने महाहर्ष से आज।
सिद्धों का लघुनन्दन बनकर पाऊँगा मैं निजपद राज।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

२९. श्री वचनगुप्तिधारक मुनिराज पूजन

(मानव)

पालनकर वचनगुप्ति का मैं मौनव्रती बन जाऊँ।
निज अंतर में रम जाऊँ अपने भीतर थम जाऊँ।।१।।
वचनावलि सर्वभाँति की त्यागूँ हे अन्तर्यामी।
इसके चारों भेदों को तव कृपा से विंशु स्वामी।।२।।
प्रभु वचनगुप्ति की पूजन महिमामय मंगलकारी।
सबको ही मोक्षमार्ग में यह होती है हितकारी।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपायी आचंलीबद्ध)

संयम जल से कर अभिषेक। गाऊँ प्रभु के गुण प्रत्येक।
परमगुरु हो जय जय नाथ महाविभू हो।।
वचन गुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौनप्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।१।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमचंदन तिलक लगाय। भवज्वर दूँ सम्पूर्ण भगाय।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।२।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के अक्षत गुणरूप। अक्षयपद दाता चिद्रूप।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।

वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।३।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के पुष्पों की माल। कामविनाशक शील विशाल।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमचरु श्रेष्ठ महान। निराहार पद करें प्रदान।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।५।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमदीपकज्योति प्रजाल। हर लूँ मिथ्याभ्रम जंजाल।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।६।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमयुक्त ध्यानमय धूप। अष्टकर्म नाशक चिद्रूप।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।७।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

संयमतरु फल मोक्ष महान। परम सौख्यदाता निर्वाण।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।
वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो।।८।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम के लाऊँ निज अर्घ्य। पाऊँ स्वपद प्रसिद्ध अनर्घ्य।
परम प्रभु हो जय जय नाथ महाविभु हो।।

वचनगुप्ति है अचल महान। सर्वोत्तम है मौन प्रधान।
देखे नाथ दूर दुःख हो पूजे नाथ महासुख हो ।।९ ।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वसंततिलका)

स्वात्मानुभूति पावन उर में पधारी।
जितने विभाव थे वे भागे विकारी।।
शुद्धात्मतत्त्व चिन्तन के भाव जागे।
आपूर्ण सौख्यपति हूँ मैं ज्ञानधारी।।

(गीतिका)

वचन से कुछ भी न बोलूँ मौन धारण करूँ प्रभु।
सतत हो एकाग्र निज में आत्मा में रहूँ विभु।।१।।
वचन की सारी प्रवृत्ति स्ववश कर निज में रहूँ।
सतत मौनारूढ़ होकर आत्मसागर में बहूँ।।२।।
वचन, सत्य, असत्य, अनुभय, उभय त्यागूँ चार योग।
आत्मा में करूँ विचरण सदा ही जो है मनोज्ञ।।३।।
जल्प और विजल्प में उलझूँ नहीं स्वामी कभी।
निर्विकल्प रहूँ सदा ही परम निजगुण पा सभी।।४।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(मानव)

अन्तर्मन निर्मल करने अब भेद-ज्ञान आएगा।
सम्यक्त्व शक्ति को पाकर यह जीव सौख्य पाएगा।।१।।
होगा यह स्वपर विवेकी निजपर को पहचानेगा।
आनन्द अतीन्द्रिय सागर निज उर में लहराएगा।।२।।
चारित्र स्वरूपाचरणी झलकेगा अभ्यंतर में।
अनुभवरस पीते-पीते शिवपथ पर आ जाएगा।।३।।

संयम की परम प्रभा पा यह मोह क्षीण कर देगा।
घातिया नाश करके यह सर्वज्ञ स्वपद पाएगा।।४।।
जो निज को ही ध्याएगा वह होगा सम्यग्ज्ञानी।
अष्टादशदोष नष्टकर परमात्मा हो जाएगा।।५।।
फिर ये अघाति भी क्षयकर सिद्धत्व स्वगुण लाएगा।
यह त्रिलोकाग्र पर जाकर निर्वाण सौख्य पाएगा।।६।।

(शार्दूलविक्रीडित)

हित मित प्रिय वच ही महान उत्तम कल्याणकारी सदा।
इससे बढ़कर श्रेष्ठ मौन मुद्रा ऋषिराज ही धारते।।
निर्मोही निर्ग्रंथ वीतरागी करुणामयी को नमन।
पीते हैं रस साम्यभाव नित ही निर्भार आनंदघन।।

ॐ ह्रीं श्री वचनगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

वचनगुप्ति की पूजन करके जाना स्वामी मौन महत्त्व।
साम्यभाव रस की महिमा सुन जागा उर में स्वतः समत्व।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

३०. श्री कायगुप्तिधारक मुनिराज पूजन

(गीतिका)

कायगुप्ति महान धारूँ काय को वश में करूँ।
दुर्निवार प्रसिद्ध तम हर शुद्ध निज अंतर करूँ।।
देवगति का मूल जिनश्रुत मुक्ति का कारण यही।
राग-द्वेष विनाश हित चारित्र दाता है यही।।
कायगुप्ति पवित्र की पूजन करूँ प्रभु भाव से।
काय के प्रति राग त्यागूँ जुड़ूँ शुद्ध स्वभाव से।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराज अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराज अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराज अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(मानव)

नहीं राग का कण कहीं दिख रहा है नभंतर स्वजल से भरा शुद्ध पावन।
चले हो स्वपथ पर स्वसंयम का बल ले तुम्हीं प्रभु हमारे तरण और तारण।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।१।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

परम श्रेष्ठ वसु बीस हैं मूलगुण प्रभु, महाश्रेष्ठ पावन है चारित्र उत्तम।
स्वचंदन की महिमा से शोभित हो स्वामी, महामोक्ष पाते बिना ही परिश्रम।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।२।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रयोदशप्रकारी स्वचारित्र धारा समिति गुप्तिव्रत पूर्ण अधिकार पाए।
तो इन्द्रादि सुर भी सरस गीत गाते तुम्हें दिव्यअक्षत चढ़ाने को आए।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।३।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभावों की महिमा से भूषित हुए तुम स्वपुष्पों की माला से शोभित हुए प्रभु।
महाशीलपद पाने के बाद स्वामी कभी लौटकर फिर नहीं आएँगे प्रभु।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।४।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वअनुभव के चरु की पा महिमा अनूठी अनाहारी पद आप पाएँगे निश्चित।
क्षुधाव्याधि हरकर शिवम् सुन्दरम् तक स्वसत्यम् के ही श्रम करेंगे प्रकाशित।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।५।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभावों के दीपक परम ज्योतिमय ही जगाते हैं अन्तर में दीपक प्रभामय।
मिलेगा प्रभो ज्ञान कैवल्य निश्चित अनंतों गुणों से भरा निज विभालय।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।६।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभावों की ही धूप लाएँगे उर में परम शुक्लध्यानी सकल कर्मनाशक।
विकारी विभावों की होली जलेगी मिलेगा स्वतः ज्ञान निज परप्रकाशक।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।७।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभावों के फल ही परम सौख्यदाता महामोक्षफल देने वाले हैं स्वामी।
निजानंद रस सिन्धु प्रकटेगा उर में परम सिद्ध पददाता निर्मल अकामी।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।८।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वभावों के अर्घ्य अपूर्व बनाकर यथाख्यात पाने का बल पा लिया है।
मिलेगी स्वपदवी अनर्घ्य निराली जिनागम ने ऐसा ही वर्णन किया है।।
सहज कायगुप्ति के स्वामी हो मुनिवर अचंचल स्वभावी हुए साधु पावन।
असंयम को सम्पूर्ण निज से पृथक्कर हुआ शान्त शीतल सहज ज्ञान उपवन।।९।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

(वसंततिलका)

आनंदकंद महिमामय पूर्ण चेतन।
ज्ञानाब्धि शुद्ध उर में निर्मल निकेतन।।
निर्मल पवित्र कैवल्य स्वज्ञान उर में।
पाऊँ स्वशक्ति द्वारा ध्रुवधाम पावन।।

(वीर)

काया में उपभोग न जाए यत्न करूँ यह भलीप्रकार।
आत्मलीनता ही उर भाए मोह-राग का कर परिहार।।१।।
हो एकाग्र आत्मा में प्रभु काया की प्रवृत्ति रोकूँ।
देह क्रिया में मन जाए तो आत्मज्ञान द्वारा टोकूँ।।२।।
हो स्वतंत्र जड़ तन से तोड़ूँ हे प्रभु सारे ही संबंध।
परिषह उपसर्गों को जयकर हो जाऊँ स्वामी निर्बंध।।३।।
त्रस थावर की हिंसा से पूरी निवृत्ति उत्तम स्वामी।
कायगुप्ति सम्यक् ही पालूँ क्षयकर सात योग नामी।।४।।
काययोग औदारिक त्यागूँ त्यागूँ प्रभु औदारिक मिश्र।
काययोग वैक्रियक त्याग दूँ तज दूँ योग वैक्रियक मिश्र।।५।।
काययोग आहारक त्यागूँ तज आहारक मिश्र प्रभो।
काययोग का मार्ग जीत लूँ निज स्वरूप में रहूँ विभो।।६।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, कायगुप्ति के हेतु।
आप कृपा से ज्ञान का, फहराऊँगा केतु।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

यह चिन्तन जागा हृदय, सचमुच मैं हूँ कौन।
कायगुप्ति की कृपा से पाया सौख्य अचौन।।

(माधव मालती)

ओ बसंती पवन पावन गीत समकित के सुनादे।
सलिल सम्यग्ज्ञान की गंगोत्री उर में बहा दे।।१।।
स्वरूपाचरणी प्रभा के लिए तरसा आज तक मैं।
स्वतः सम्यक्त्वाचरण की मधुर ध्वनि उर में गुंजा दे।।२।।
ज्ञानऋतु का यही मौसम देखना मैं चाहता हूँ।
माननीया भावना को निज हृदय में अब नचा दे।।३।।
यथाख्यात चरित्र की सम्पूर्ण भक्ति प्रदान कर दे।
अवस्था अरहंतप्रभु सम तू अभी मेरी सजा दे।।४।।
मिथ्यात्वादिक चार प्रत्यय रास्ता रोके हुए हैं।
बिना मौत मरा हुआ हूँ आ मुझे अब तो जिला दें।।५।।
मार्ग में कठिनाइयाँ हैं मोहिनी अँगड़ाइयाँ हैं।
तू मुझे सन्मार्ग शिवकर आ अभी जल्दी बता दे।।६।।
रोग-भोग विनाश की औषधि कहाँ मुझको मिलेगी।
देर मत कर शीघ्र आकर तू मुझे उसका पता दे।।७।।
क्या कहा मैं स्वयं ही भंडार हूँ शिवसुखामृत का।
बुद्धि मेरी मूर्छित है आ उसे अब तो जगा दे।।८।।
स्वर्गसुख की कामना भी जीर्ण तृणवत् मुझे भासे।
मुक्तिपथ की चाहना है, आ मुझे चलना सिखा दे।।९।।

ॐ ह्रीं श्री कायगुप्तिधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

कायगुप्ति की पूजन करके पाया निज पावन चारित्र।
निज सम्यक् चिन्तन करके हो जाऊँगा पूर्ण पवित्र।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐

अंतिम महार्घ्य

(दोहा)

समयसार को नमन कर, स्वानुभूति उर लाय।
चिर स्वभाव ही हे प्रभो, भवदुःख नाश कराय।।
पर भावों से पृथक् है, गुण अनंतमयरूप।
अनेकान्त की मूर्ति ही, सर्वश्रेष्ठ शिवरूप।।

(ताटंक)

रत्नत्रय के आराधक को नहीं जीविताशंसा है।
रत्नत्रय के आराधक को अल्प न मरणाशंसा है।।१।।
रत्नत्रय के आराधक को कभी सुहृद अनुराग नहीं।
रत्नत्रय के आराधक को बंधु मित्र का भाव नहीं।।२।।
रत्नत्रय के आराधक को होता रागवितान नहीं।
रत्नत्रय के आराधक को होता है दुर्ध्यान नहीं।।३।।
रत्नत्रय के आराधक की महिमा सबसे न्यारी है।
उसको तो केवल रत्नत्रयभक्ति सदा ही प्यारी है।।४।।

(दिग्वधू)

जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।
कितने भव बीत चुके संकल्प-विकल्पों में।।१।।
उड़-उड़ कर यह चेतन गति-गति में जाता है।
रागों में लिप्त सदा भव-भव दुःख पाता है।।२।।
पल भर को भी न कभी निज आतम ध्याता है।
निज तो न सुहाता है पर ही मन भाता है।।३।।
यह जीवन बीत रहा झूठे संकल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।४।।
निज आत्मस्वरूप तो लख तत्त्वों का कर निर्णय।
मिथ्यात्व छूट जाए समकित प्रगटे निजमय।।५।।
निज परिणति रमण करे हो निश्चय रत्नत्रय।
निर्वाण मिले निश्चित छूटे यह भवदुःखमय।।६।।

सुख ज्ञान अनंत मिले चिन्मय की गल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।७।।
शुभ-अशुभ विभाव तजे हैं हेय अरे आस्रव।
संवर का साधन ले चेतन का कर अनुभव।।८।।
शुद्धात्म का चिन्तन आनंद अतुल अनुभव।
कर्मों की पगध्वनि का मिट जायेगा कलरव।।९।।
तू सिद्ध स्वयं होगा पुरुषार्थ स्वकल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।१०।।
तू कौन कहाँ का है अरु क्या है नाँव अरे।
आया है किस घर से जाना किस गाँव अरे।।११।।
सोचा न कभी तूने होकर निज छाँव अरे।
यह तन तो पुद्‌गल है दो दिन का ठाँव अरे।।१२।।
तू चेतन द्रव्य सबल ले सुख अविकल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।१३।।
नर रे नर रे तू चेतन अरे नर रे।
क्यों मूढ़ विमूढ़ बना कैसा पागल खर रे।।१४।।
अन्तर्मुख होजा तू निज का आश्रय कर रे।
पर अवलंबन तज रे निज में निज रस भर रे।।१५।।
पर परिणति विमुख क्या हुआ तो सुख पल अल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।१६।।
यदि अवसर चूका तो भव-भव पछताएगा।
फिर काल अनंत अरे दुःख का घन छाएगा।।१७।।
यह नर भव कठिन महा किस गति में जाएगा।
नर भव पाया भी तो जिनश्रुत ना पायेगा।।१८।।
अनगिनती जन्मों में अनगिनती कल्पों में।
जिया कब तक उलझेगा संसार विजल्पों में।।१९।।

(दोहा)

महा अर्घ्य अर्पण करूँ, अपने हित के काज।
रत्नत्रय की भक्ति से, पाऊँ निजपदराज।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अंतिममहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महाजयमाला

(मानव)

रत्नत्रय विधान करके रत्नत्रय को कर वंदन।
रत्नत्रय उर में धारूँ क्षय कर दूँ भव के बंधन।।१।।
चैतन्यतत्त्व के भीतर परिपूर्ण ज्ञान का सागर।
निज परिणति प्रमुदित हो तो भर लो निज अनुभव गागर।।२।।
अपने स्वभाव की महिमा को थोड़ा सा तो जानो।
तुम एक त्रिकालीध्रुव हो अपने को तो पहिचानो।।३।।
भव-भव में भटके हो तुम चारों गतियों में जाकर।
पशुगति में भी जन्मे हो तुम ग्रीवक तक से आकर।।४।।
निज बोधिप्राप्त करने को यह नरभव फिर पाया है।
अपने कल्याण हेतु ही यह अवसर फिर आया है।।५।।
अब रचा हृदय रांगोली समकित का स्वागत कर लो।
मिथ्यामोह की सारी कालुषता अब तो हर लो।।६।।
समकित जब पाया है तो संयम के गीत सुनाओ।
हो गए स्वरूपाचरणी तो निज से प्रीत बढ़ाओ।।७।।
निष्कंटकमार्ग मिला है इस पर ही चलते रहना।
उपसर्ग परीषह आए तो हँसकर उनको सहना।।८।।
तुम चलित न होना पलभर अविचल स्वभाव से चेतन।
विश्राम पूर्ण पाना है तो हरना भव के बंधन।।९।।
सम्यक् स्वभाव के निर्मल नित अर्घ्य चढ़ाऊँ स्वामी।
पदवी अनर्घ्य पाऊँ मैं हो जाऊँ अन्तर्यामी।।१०।।
यह पूर्ण अर्घ्य जयमाला का सादर चरण चढ़ाऊँ।
रत्नत्रय की महिमा पा शिवपथ पर चरण बढ़ाऊँ।।११।।

ॐ ह्रीं श्री रत्नत्रयधारकमुनिराजाय अनर्घ्यपदप्राप्तये महाजयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(वीर)

रत्नत्रयमंडल विधान कर हुआ हृदय में बहुआनंद।
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र से पाऊँगा निज परमानंद।।
रत्नत्रयमण्डल विधान की पूजन का है यह उद्देश।
निश्चय पूर्ण देशसंयम ले धारूँ दिव्य दिगम्बरवेश।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

समुच्चय महार्घ्य

(तांटक)

निजभावों का महार्घ्य ले पाँचों परमेष्ठी ध्याऊँ।
जिनवाणी जिनधर्म शरण पा देवशास्त्रगुरु उर लाऊँ।।१।।
तीस चौबीसी बीस जिनेश्वर कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्य ध्याऊँ।
सर्व सिद्ध प्रभु पंचमेरु नन्दीश्वर गणधर गुण गाऊँ।।२।।
सोलहकारण दशलक्षण रत्नत्रय नव सुदेव पाऊँ।
चौबीसों जिन भूत भविष्यत वर्तमान जिनवर ध्याऊँ।।३।।
तीनलोक के सर्वबिम्ब जिन वन्दूँ जिनवर गुण गाऊँ।
अविनाशी अनर्घ्य पद पाऊँ शुद्ध आत्मगुण प्रगटाऊँ।।४।।

(दोहा)

महाअर्घ्य अर्पण करूँ, पूर्ण विनय से देव।
आप कृपा से प्राप्त हो, परम शान्ति स्वयमेव।।

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचायोपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रेभ्यः त्रिलोकसम्बन्धीकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अशीति-चैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वरद्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्री सम्मेदशिखर, गिरनारगिरि, कैलाशगिरि, चम्पापुर, पावापुर आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्रस्थित सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, ऋषभादिचतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यो, भगवज्जिन सहस्राष्टनामेभ्येश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिपाठ

(गीतिका)

सुख शान्ति पाने के लिए पुरुषार्थ मैंने प्रभु किया।
श्रेष्ठ रत्नत्रयविधान महान प्रभु मैंने किया।।१।।
अब नहीं चिन्ता मुझे है कभी होऊँगा अशान्त।
आज मैंने स्वतः पाया ज्ञान का सागर प्रशान्त।।२।।

विश्व के प्राणी सभी चिरशान्ति पायें हे प्रभो।
मूलभूत निजात्मा का ज्ञान ही पायें विभो।।३।।
मूल भूल विनष्ट करके नाथ मैं ज्ञानी बनूँ।
भक्ति रत्नत्रय हृदय हो पूर्णतः ध्यानी बनूँ।।४।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

क्षमापना पाठ

(दोहा)

भूल चूक कर दो क्षमा, हे त्रिभुवन के नाथ।
आप कृपा से हे प्रभो, मैं भी बनूँ स्वनाथ।।
अल्प नहीं है हे प्रभो, पूजन विधि का ज्ञान।
अपना सेवक जानकर, क्षमा करो भगवान।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

卐